सचित्र
संक्षिप्त
भक्त-चरित-माला
१३ वाँ पुष्प

सुमन

सम्पादक
हनुमान प्रसाद पोद्दार

मूल्य पैंतालीस पैसे
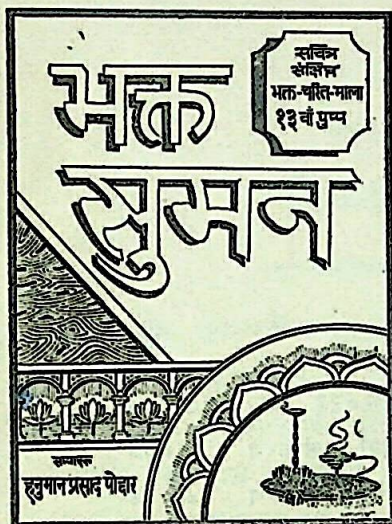
भक्त
सुमन
सचित्र
संक्षिप्त
भक्त-चरित-माला
१३ वाँ पुष्प
सम्पादक
हनुमानप्रसाद पोद्दार

श्रीहरिः

निवेदन

यह संक्षिप्त भक्त-चरित-मालाका तेरहवाँ पुष्प है। इसमें भक्तोंकी बड़ी सुन्दर दस कथाएँ हैं। भक्त भगवान्‌के ही स्वरूप हैं, उनके चरित्र पढ़ने-सुननेसे बहुत लाभ होता है। आशा है, पाठक-पाठिकागण इन कथाओंको पढ़कर और अपने जीवनमें भगवद्भक्तिको प्रधान स्थान देकर जीवनका असली लाभ उठावेंगे।

हनुमानप्रसाद पोद्दार

श्रीहरिः

विषय-सूची

चित्र-सूची

भक्त राँका-बाँका

श्रीहरिः

भक्त-सुमन

भक्त विष्णुचित्त और उनके शिष्य नरपति

दक्षिण पाण्ड्यदेशमें धन्विनगर नामक स्थानमें मुकुन्द नामक ब्राह्मण निवास करते थे। ब्राह्मण बड़े ही धर्मात्मा, सदाचारी, शास्त्रज्ञ और सद्गुणी थे। रोज सबेरे श्रीभगवान्का भक्तिपूर्वक पूजन करते थे। जो कुछ मिल जाता था, उसीमें वे मस्त रहते थे; परंतु उनके पुत्र नहीं था। ब्राह्मणीकी प्रबल इच्छा थी कि उन्हें पुत्र हो; उसने इसके लिये श्रीभगवान्से प्रार्थना की। भगवान्ने

मुकुन्दको स्वप्न दिया कि तुम्हारे घरमें एक बड़ा भक्त पुत्र उत्पन्न होगा। तदनुसार दसवें मास उनके एक सुन्दर पुत्ररत्न पैदा हुआ। उसका नाम रक्खा गया विष्णुचित्त। विष्णुचित्त लड़कपनसे ही भगवान्‌का भक्त था। वह भगवान्‌की कथा बड़ी रुचिके साथ सुनता। लड़कोंमें परस्पर भगवान्‌की लीलाके ही खेल खेलता। परस्पर भगवान्‌की ही चर्चा करता। माता-पिताकी आज्ञा मानता। कभी किसीसे लड़ता नहीं। किसीको सताता नहीं। दूसरेके दोषों-को सह लेता, परंतु किसीका भी छिद्र किसीके सामने नहीं खोलता। उसकी वाणीमें इतनी मधुरता थी कि वह जिसके साथ एक बार बोल लेता, उसीका मन मोह लेता। इस प्रकार बाल्यावस्थामें ही उसमें ऐसे दैवी गुणोंका प्रादुर्भाव हो गया कि उसके साथ खेलने-वाले बालक भी सात्त्विक बुद्धिके होने लगे। पिताने विष्णुचित्तका यज्ञोपवीत-संस्कार कराया। तदुपरान्त थोड़े ही दिनों बाद पिता परलोक सिधार गये।

विष्णुचित्त जवान हुए; परंतु उनमें जवानीका मद नहीं आया। सोलहसे चालीसतककी अवस्थाको 'गधापचीसी' कहते हैं। इस उम्रमें जिसका जीवन पवित्र रह जाता है उसका जीवन अन्ततक पवित्र रहता है। विष्णुचित्त सुन्दर थे, मधुभाषी थे, हृष्ट-पुष्ट थे, परंतु उनका मन भगवान्‌में होनेके कारण जवानीमें वे प्रमादके वश नहीं हुए। नियमित संध्योपासन, वेदाध्ययन, साधुसेवा चलने लगी। एक दिन विष्णुचित्तके मनमें आया कि भगवान्‌के दसों अव-तार ही परम सुन्दर और परम मधुर हैं, परंतु यदुकुलभूषण भग-वान् श्रीकृष्णके समान सौन्दर्य-माधुर्यनिधि तो कोई नहीं है; मुझे

अपना जीवन उन्हींके चरणोंमें निवेदन करना चाहिये। शुद्ध हृदय-के सात्त्विक विचारको दृढ़ निश्चयके रूपमें परिणत होते देर नहीं लगती। विष्णुचित्तने अपनेको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें सम्पूर्णतया समर्पण कर दिया। वे यदुनाथकी करुणापर मुग्ध हो गये। अहा! मेरे स्वामी कितने दयालु हैं—कैसे प्रेममय हैं। नारद और सनकादि मुनि निरन्तर जिनका ध्यान करते हैं, वेद जिन्हें नेति-नेति कहते हैं और ब्रह्मा तथा इन्द्र जिनकी कृपा-कोरके लिये सदा तरसते रहते हैं, उन साक्षात् सच्चिदानन्दघन परमात्मा श्रीकृष्णको गोकुलमें नन्दरानी अपना स्तनपान कराकर उनका लाड़ लड़ाती हैं। व्रजके गोप बालक उनके साथ निःसंकोच खेलते हैं। गौएँ उनकी वंशीध्वनिको सुनकर उनके चरणप्रान्तमें आकर खड़ी हो जाती हैं और उनके मनोहर मुखारविन्दकी ओर एकटक दृष्टिसे देखा करती हैं। इन सब खेलोंसे ब्रह्मादि देवता भी मोहित हो जाते हैं, परंतु प्रेमानन्दनिधि मेरे स्वामी श्रीकृष्णको अपने भक्तोंके साथ खेलनेमें जरा भी हिचक नहीं होती। उनकी एक-एक लीला परम आनन्ददायिनी है।

इस प्रकारके विचारोंमें—परम आराध्य श्रीकृष्णचन्द्रके गुण-नाम-स्मरणमें ही विष्णुचित्तका समय बीतने लगा। साथ ही शरीर भी उन्हींकी सेवामें लग गया। कभी वे भगवान्‌के लिये पुष्पचयन करके मनोहर माला गूँथते, कभी चन्दन घिसते, कभी नैवेद्यकी तैयारी करते; कभी आरती उतारते। इस प्रकार श्रीभगवान्‌के कैङ्कर्य और चिन्तनमें ही वे रत हो गये। उन्होंने एक सुन्दर बाग

लगाया और उसमें भगवान्‌के मङ्गलविग्रहकी स्थापना की। स्वयं रात-दिन वहीं रहकर तन-मन-धनसे भगवान्‌की सेवा करने लगे। भगवान्‌के साथ उनका गूढ़ परिचय हो गया, वे धन्य हो गये।

एक समय उस देशके राजा उस बगीचेके पाससे कहीं जा रहे थे। सहज ही सुन्दर बगीचा देखकर वहाँ विश्राम करनेकी इच्छा हुई। राजा घोड़ेसे उतर पड़े और उन्होंने अंदर जाकर भगवान्‌के दर्शन किये। फिर विष्णुचित्तजीके पास गये। राजा परम भागवत विष्णुचित्तके तेजोमण्डित मुखमण्डलको देखते ही प्रभावित होकर उनके चरणोंमें गिर पड़े और उनसे विनयपूर्वक बोले—'स्वामिन् ! मैं रात-दिन अपने राज-काजमें ही लगा रहता हूँ। मेरे कल्याणके लिये जो उचित हो वही उपदेश कृपाकर मुझे दीजिये।' राजाके विनम्र वचनोंको सुनकर विष्णुचित्तने मुसकराते हुए स्नेहपूर्ण किंतु गम्भीर शब्दोंमें कहा—

'राजन् ! जैसे बनिजारे लोग आठ महीने देश-विदेशमें घूम-फिरकर धन कमाते हैं और फिर चार महीने चौमासेमें घर बैठकर खाते हैं, वैसे ही बुद्धिमान् लोग मनुष्य-जन्ममें ऐसे पुण्य कर्म करते हैं जिनके फलस्वरूप अन्यान्य योनियोंमें उन्हें कोई भी अभाव या कष्ट नहीं होता। यह स्मरण रखना चाहिये कि एक मनुष्य-जन्मकी ही कमाई अन्यान्य शरीरोंमें भोगी जाती है। यहाँ जो पापरूप बुरी कमाई करता है उसे नाना प्रकारकी योनियोंमें भटकते हुए भयंकर कष्ट सहने पड़ते हैं और यहाँ जो पुण्यरूप अच्छी कमाई करता है उसे बार-बार उत्तम योनि मिलती है—कहीं

पूर्वकर्मवश निकृष्ट योनि मिलती है तो वहाँ भी उसे कोई कष्ट नहीं होता। अतएव मनुष्यदेहको प्राप्त करके जीवको सदा पुण्य कर्म ही करते रहना चाहिये। परंतु सच्ची बात तो यह है कि मनुष्य-देहकी सफलता एकमात्र पुण्य कर्मोंमें ही नहीं है। क्योंकि पुण्य-कर्म भी पुनः जन्म देनेवाले होते हैं। आखिर वह भी तो है बन्धन ही। बेड़ी लोहेकी हो या सोनेकी, है तो बेड़ी ही। मानव-जीवनकी सच्ची सफलता तो इसमें है कि वह जन्म-मरणका चक्कर छुड़ानेवाले परमात्माके परम पदको प्राप्त कर ले। अतएव तुमको उसीके लिये प्रयत्न करना चाहिये। आजसे पहले असंख्य राजा हो गये और चले गये। उनके नाम भी लोग नहीं जानते। तुम यदि अपने जीवनको राजमदमें खोओगे तो पाप करोगे, विषयवासनामें बिताओगे तो भी पाप होगा। केवल राज-काजमें लगाओगे तब भी जीवन व्यर्थ होगा। अतएव तुम अपनेको भगवान् श्रीकृष्णके परमपावन चरणोंमें अर्पण करके उन्हींके प्रीत्यर्थं, उन्हींकी सेवाके लिये, सब कुछ उन्हींका समझकर, अहर्निश उनके पवित्र नाम-गुणोंका चिन्तन करते हुए ही उनके किङ्कररूपसे राज-काज करो। किसी प्रकार भी अहंकार, ममता और विषयासक्तिको पास न फटकने दो। अहंकार करो भगवान्के दासत्वका, ममता करो उनके चारु चरणोंमें और आसक्त हो जाओ उनकी रूपमाधुरीपर—उनकी मधुर वंशीध्वनिपर! जाओ, राज्य उनको अर्पण करके तुम दीवान बन जाओ और उनकी आज्ञाका पालन करनेके लिये ही राज्यशासन करो। उतना ही अंश अपने काम लाओ जितना तुम्हारे शरीरकी

और परिवारकी स्थितिके लिये आवश्यक हो। देकर खाओ, भगवदर्थं निवेदन करके प्रसादमात्र ग्रहण करो। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तुमपर कृपा करेंगे। वे बड़े दयालु हैं।'

परमभक्त विष्णुचित्तकी ओजभरी वाणीने राजाके मनपर जादूका काम किया। राजाकी विषयासक्ति भगवान्‌की परम अनुरक्तिके रूपमें परिणत हो गयी। वे अपनी राजधानीको लौट आये। उनका जीवन बदल गया। उनके व्यवहारसे सारी प्रजा सुखी हो गयी। उनकी प्रत्येक क्रिया भगवदर्थं होने लगी। वे अपनी प्रत्येक चेष्टासे भगवान्‌की पूजा करने लगे। उनका जीवन—उनका एक-एक श्वास भगवत्पूजा बन गया। वे यथार्थं भजनानन्दी हो गये।

कुछ समय बाद गुरुवर विष्णुचित्तजीकी कृपासे दीनदयालु भगवान्‌ने लक्ष्मीजीसहित प्रकट होकर राजाको अपने दुर्लभ दर्शन दिये। भगवान्‌की उस अनुपम छबिका वर्णन कौन कर सकता है। राजाका जीवन सफल हो गया। वे कृतार्थं हो गये। सत्सङ्ग और निष्ठापूर्वक किये हुए भगवद्भजनका फल प्रत्यक्ष देखकर सभी लोग चकित हो गये।

इस प्रकार गुरु और शिष्य दोनों ही भगवान्‌के कैङ्कर्यंको प्राप्तकर परमधामको सिधारे।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय !

भक्त विसोबा सराफ

नलिनीदलगतजलमतितरलं तद्वज्जीवितमतिशयचपलम् ।
क्षणमपि सज्जनसङ्गतिरेका भवति भवार्णवतरणे नौका ॥

—मोहमुद्गर

कितना चञ्चल, कितना क्षणभङ्गुर है यह मानव-जीवन। कमलके पत्तेपरसे जलकी बूँदको ढुलकते देर लग सकती है; परंतु इसके जाते देर नहीं लगती। यहाँका सारा पसारा पलक मारते जाने कहाँ छिप जायगा, परंतु इस धूएँके धौरहरके पीछे हम सभी परेशान हैं। अँधेरे घरमें लूट-खसोट मची है। इस घोर अन्धकारमें अपना हाथ भी नहीं सूझता। द्वारपर खड़ा कोई जोर-जोरसे पुकार रहा है कि दरवाजा खोलो, बाहर सूरज निकल आया है, प्रकाशमें आओ। परंतु कमरेके भीतर इतनी तुमुल ध्वनि हो रही है कि बाहरके शब्द कोई सुन ही नहीं पाता। यह है हमारी भीषण विषयासक्ति!

ऐं! यह कितनी मधुर वाणी, कितना मीठा स्वर! कौन गा रहा है पर्देके उस पारसे? कितना मीठा, कितना प्यारा है यह मोहक स्वर।

जाग रे, नर! जाग रे।

क्यों सोया गफलतका माता? जाग रे, नर! जाग रे॥
या जागै कोइ जोगी-भोगी, या जागै कोइ चोर रे।
या जागै कोइ संत पियारा, लगी रामसों डोर रे॥
ऐसी जागन जाग पियारे, जैसी ध्रुव प्रह्लाद रे।
ध्रुवको दीनी अटल पदवी, प्रह्लादको राज रे॥
मन है मुसाफिर तन सराय बिच तू कीता अनुराग रे।
रैन बसेरा कर ले डेरा, उठ चलना परभात रे॥
साधु सँगत सतगुरुकी सेवा पावै अचल सुहाग रे।
नितानंद भज रामगुमानी! जागत पूरन भाग रे॥
जाग रे, नर! जाग रे।

इतने प्यारसे, इतनी आत्मीयताके साथ यह कौन जगा रहा है? इस अँधेरे घरमें प्रकाशकी किरणें कौन फेंक रहा है? यह तो कोई दयापरवश संत ही है। जो स्वयं जगा हुआ है और 'अचल सुहाग' का सुख लूट रहा है। वह जगत्को जगानेके लिये इतना व्यग्र क्यों दीखता है? क्या इसमें एकमात्र हेतु उसकी दयापरवशता ही नहीं है?

जगत्की निद्रासे मुक्त, भगवान्में जागनेवाले संत इस संसारके जीवोंको दयापरवश ही जगाते फिरते हैं। वे एक-एकके द्वारपर जाकर जगाते हैं, परंतु किसे जागनेकी पड़ी है, सभी सोनेका आनन्द लूट रहे हैं। फिर भी संत टेर लगा रहे हैं—

जाग रे, नर! जाग रे।

ऐसे ही दयालु संतोंमें संत विसोबा हैं। आज इन्हींका गुणचिन्तन किया जाय और इन्हींकी सन्निधिमें रहा जाय।

भगवान्की ही भाँति भक्तोंका गुणचिन्तन भी जन्म-जन्मके कल्मषको मिटाकर चिरशान्ति और शाश्वत आनन्दका दाता है। और इसी अर्थमें श्रीआद्यशङ्कराचार्यने 'मोहमुद्गर' में कहा है कि सज्जनोंका एक क्षणका भी सङ्ग संसार-सागरको पार करनेके लिये सुदृढ़ नौका है। संतोंका सङ्ग दोनों ही प्रकारसे होता है—उनकी सन्निधिमें रहनेसे और उनके गुण-स्मरणसे भी !

भक्तिपुरी पण्ढरपुर और प्रभु श्रीपण्ढरीनाथसे हम सभी परिचित हैं। वहाँसे पचास कोसके अन्तरपर औढ़िया नागनाथ एक अत्यन्त प्राचीन शिवक्षेत्र है। यह बहुत ही जागता हुआ स्थान है और भगवान् शंकरके द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमें एक है। विसोबा यहींके रहनेवाले थे। ये जातिके तो थे यजुर्वेदी ब्राह्मण, परंतु काम करते थे सराफ़ीका। इसलिये ये विसोबा सराफ़के ही नामसे प्रख्यात हुए। घरमें एक सती-साध्वी धर्मपत्नी और चार लड़के थे। जीवन बड़ा ही सादा और सेवा-परायण था तथा सब-के-सब साधुसेवी थे। व्यवसायमें रहते हुए भी विसोबाका चित्त निरन्तर भगवान्में ही बसता था। वे एक आदर्श गृहस्थ थे और गृहस्थ-धर्मका मुख्य व्रत अतिथि-सेवा उन्हें प्राणोंसे भी प्यारा था। पत्नी भी इतनी अनुकूल और बच्चे इतने आज्ञाकारी कि यदि भोजन बन चुकनेपर कोई संत-महात्मा या अभ्यागत आ जाता तो उनमें होड़-सी लग जाती कि मैं भूखा रहूँगा—मेरा ही भोजन अभ्यागतको दिया जाय। इस होड़ा-होड़ीमें विसोबाको बड़ा सुख मिलता था और यह नहीं कि भोजन देकर ही विसोबाको संतोष

हो जाय। वे अभ्यागतको साक्षात् नारायण समझकर उसकी सब प्रकारसे परिचर्या करते तथा उसके सुख और सुविधाकी एक-एक बातका पूरा ध्यान रखते। सोचते-आज तो साक्षात् श्रीहरिने मुझपर दया की है। आज जिस प्रकार भी हो, इनकी सेवासे अपने जीवनको धन्य कर लेना है। किसी अतिथिके आते ही वे अपनी प्राणप्रिया पत्नी और बच्चोंसे धीरेसे कहते—देखो, आज स्वयं प्रभु इस वेषमें हमलोगोंके घर पधारे हैं; इनकी पूजा करो, इनकी संतुष्टि-लाभ करो। घरवाले भी सेवा करनेमें अपना परम सौभाग्य समझते।

एक बारकी बात है—दक्षिणमें भयानक दुर्भिक्ष पड़ा। रुपयेका दो सेर अन्न बिकने लगा और वह भी पीछे अप्राप्य हो गया। क्षुधासे पीड़ित हजारों नर-नारी विसोबाके द्वारपर दाताकी जय मनाने लगे। विसोबाने समझा स्वयं नारायणने ही मुझसे अन्नकी सेवा स्वीकार करनेकी कृपा की है। वे लगे खुले हाथ लुटाने। जो भी आता भरपूर पाता। कोठला-का-कोठला खाली होता गया। घरका सारा अन्न समाप्त हो चुकनेपर रुपयेसे महँगा अन्न खरीदकर बाँटा जाने लगा; परंतु उधर भीड़ने भी दातापर धावा बोल दिया—संख्या नित्य बढ़ती गयी और विसोबाके रुपये भी समाप्त होनेपर आये। भिखारियों, नहीं-नहीं दरिद्रनारायणोंका जमघट रात-दिन दरवाजेपर लगा रहता। माँके स्तनमें दूध न होनेपर भी बच्चा जैसे उसे चूसता ही जाता है, उसी प्रकार विसोबाके निर्धन हो जानेपर भी अभ्यागतोंकी बाढ़ न रुकी। घरके बासन बिके, गहने बिके, जो कुछ भी बिक सकता था बिक गया। विसोबाके हृदयमें अपनी कंगालीपर, जिसे उन्होंने स्वेच्छासे वरण

किया था तनिक भी ग्लानि नहीं हुई, वे दोनों हाथोंसे लुटाते गये और अन्तमें, अन्तमें वही हुआ जो ऐसे भाग्यवानोंको होता है।

दुनिया हँसने लगी। कैसा मूर्ख है यह विसोबा। नगरसेठ बना फिरता था! आज यह राहका भिखारी बन बैठा। अरे, दानकी भी एक सीमा होती है, दयाकी भी एक हद है। ऐसा पागल तो कहीं देखनेमें ही नहीं आया। जो घरका सब अनाज तो लुटा ही दे, जोरूके गहने, यहाँतक कि घरके वासन भी बेचकर भिखारियोंको भीख देता फिरे। जिस गलीसे विसोबा निकलते लोग उनपर आवाजें कसते! विसोबा इसे प्रभुका प्रसाद समझकर सिर-आँखोंपर रखते।

दुर्भिक्ष अभी गया नहीं था। विसोबाका हृदय लोगोंकी बढ़ती हुई दुर्दशाको देखकर टूक-टूक हो रहा था। घरमें पैसे थे नहीं कि अन्न लाकर बाँटा जाय, परंतु विसोबा हिम्मत हारनेवाले जीव नहीं थे। अपने गाँवने कई कोस दूर कासेगाँव नामक वस्तीमें जाकर विसोबाने एक पठानसे कई हजार रुपये बहुत कड़े सूदपर कर्ज लिये। पठान विसोबाकी पहली दशासे परिचित था, इसलिये विना आनाकानी किये उसने रकम दे दी। विसोबाने पुरनोट लिख दिया। रुपये लेकर विसोबा घरकी ओर बढ़े तो उनके आनन्दका कोई ठिकाना ही न था। वे राहभर यही सोचते आये कि इतने रुपयेसे कई दिन दरिद्र-नारायणकी सेवा कर सकूँगा। सब-के-सब रुपयोंका अन्न आया और लगा बँटने। विसोबाकी इस निष्ठासे प्रभुका सिंहासन डोल उठा और वे आये अपने इस प्यारे भक्तका दर्शन करने। कैसे

छिप-छिपकर, किस-किस वेषमें वे आते हैं! परंतु हाय! हम उन्हें पहचान नहीं पाते और वे द्वारपरसे लौट जाते हैं। हमारी उपेक्षा और झिड़कियोंसे वे कभी ऊबते नहीं; वे आते हैं और फिर आते हैं, धीरेसे द्वारपर धक्का देकर कहते हैं—'ओ मानव! खोलो, अपना हृदयद्वार खोलो; मैं तुमसे मिलने आया हूँ, मुझे तुम्हारे बिना, तुम्हें देखे बिना चैन नहीं, जरा खोलो तो।' परंतु अभागा मानव प्रभुकी इस आतुर कारको सुनकर भी अनसुनी कर देता है—इतना व्यस्त है वह इस प्रपञ्चमें, इतना गर्क है वह इस दुनियामें।

प्रभु आये। स्वयं हरि पधारे और किस रूपमें सो भी देखिये। 'दाताकी जय हो! जय हो मालिककी! सरकार! बहुत दिनोंका भूखा हूँ। पेटमें अन्नका एक दाना नहीं गया है। कहीं कोई बात-तक नहीं पूछता। आपका नाम सुनकर आया हूँ। एक मुट्ठी अन्न-की दया हो। भगवान् आपका भला करें! दाताकी जय हो! नारायण हरि!'

भिखारियोंकी भीड़में—पीछेसे एक आर्त चीत्कार आ रहा था। गंदे चिथड़ोंमें लिपटा हुआ एक नरकङ्काल हाथ उठाकर बड़ी कठिनाईसे दाताकी जय बोल रहा है। विसोबाने उसकी ओर देखा और बड़े ही भावभरे हृदयसे उसे देखा। जल्दी-जल्दी सबको दे चुकनेपर उसकी बारी आयी। वह बेचारा अपने स्थानपर ही खड़ा लड़खड़ा रहा था। उसमें और चलनेकी शक्ति नहीं थी। विसोबा उसके पास पहुँचा। शरीरसे भयानक दुर्गन्ध आ रही थी। उसे गोदमें उठाकर अपने घर लाया। शीतोष्ण जलसे उसे स्नान कराया, कपड़े बदले और मस्तकपर चन्दनका लेप किया। घरमें

जो कुछ भी तैयार हो सकता था, तैयार कराकर प्रेमपूर्वक भोजन कराया। अपने हाथसे उसके पैर धोये, स्त्रीने पंखा लिया। भिखारीने भरपेट भोजन किया। उन्हें ऐसा ही भोजन विशेष प्रिय है। वह तो भावके भूखे न ठहरे? 'सबसे ऊँची प्रेम सगाई!' आज त्रिभुवनके स्वामी भक्तके घर भिखारीका स्वाँग बनाकर भोजन करने आये हैं। धन्य भाग्य है भक्तका! वैष्णव तो सच्चा वही है जिसके लिये समस्त जगत्में—चर-अचरमें—विष्णुके सिवा कुछ रह ही नहीं जाता। जो जगत्के जीवोंकी उपेक्षा कर केवल मूर्तिमें ही भगवान्को केन्द्रित समझता है वह भक्त कैसा, वैष्णव कैसा?

विसोबाका आदर्श अतिथि-प्रेम देखकर भिखारीका रोम-रोम पुलकित हो उठा। उसने गद्गद वाणीसे कहा—बेटा! मैं तुम्हें क्या असीस दूँ। भगवान् तुम्हारा भला करें।

लगाने-बझानेवाले लोग बराबर मौका ढूँढ़ते रहते हैं और किसीको संकटमें देख उन्हें पुत्रोत्पत्तिका-सा सुख मिलता है। विसोबाकी दानशीलता उनसे देखी न गयी और गाँवके ही कुछ लोगोंने पता लगाया कि इस बार कासेगाँवके पठानसे रुपया लाकर विसोबा अन्न बाँट रहा है। फिर क्या था! पठानके पास जाकर उन लोगोंने विसोबाके दिवालियेपनका ढिंढोरा पीटना शुरू किया। पठानको भी अपनी भूल मालूम हुई और वह सीधे विसोबाके घर आकर लगा रुपयेका तकाजा करने। विसोबाके पास रुपये थे कहाँ कि वह देता। परंतु उसने कहा—'धीरज रखिये, सात दिनमें कहीं-न-कहींसे प्रबन्ध कर आपके रुपये लौटा

दूँगा।' 'ना, ना, मैं यह सब बहानेबाजी नहीं सुनता; मुझे अभी रुपये दो या गाँवके किसी सम्पन्न आदमीकी जमानत दिलाओ। गाँवके कुछ भले आदमी भी थे जो यह जानते थे कि विसोबा कभी असत्य नहीं बोलता, चाहे उसे प्राण ही क्यों न देने पड़ें। उन लोगोंने आकर पठानको मनाया।

छः दिन बीत गये। विसोबा कहींसे भी कोई प्रबन्ध नहीं कर सका। सातवाँ दिन भी आ गया। विसोबा सोचने लगा—हा नारायण! आजतक तुमने मेरी एक भी बात खाली नहीं जाने दी है, आज मेरी लाज जा रही है। यह तो मेरी लाज नहीं, तुम्हारी ही लाज है। हे हरि! मैं तो तुम्हारी ही बाट जोह रहा हूँ। तुम्हीं तो मेरे संगी हो-तुम्हीं मेरे जन्म-मरणके साथी हो! चाहे जो हो जाय, तुम्हें छोड़कर मैं जाऊँ तो कहाँ?

ऐसा अलौकिक भाव जिस भक्तका हो क्या प्रभु कभी उसकी उपेक्षा कर सकते हैं? ऐसा कौन-सा संकट है जिसमेंसे भगवान् भक्तको नहीं उबार सकते? भगवान्ने क्या कभी अपने किसी भक्तकी उपेक्षा की है? और कैसी अपरम्पार है उनकी लीला! क्षणमें असम्भवको सम्भव और सम्भवको असम्भव कर देना उनका एक कुतूहल है। घरमें दीया जलानेसे जैसे झरोखोंमें भी प्रकाश दिखायी देता है, वैसे ही मनमें जब भगवान् प्रकट होते हैं, तब इन्द्रियोंमें भी भजनानन्द प्रकट होने लगता है। विसोबा आज एकान्तमें बैठा-बैठा प्रभुका नाम-स्मरण कर रहा है, आँखोंसे आँसुओंकी धाराएँ बह रही हैं, वाणी गद्गद हो रही है—राम-कृष्ण-

हरिका अखण्ड स्मरण हो रहा है।

भक्तकी लाज भगवान्‌की लाज है। भक्तकी टेक भगवान्‌की टेक है। पण्ढरीनाथने विसोबाके लिये विसोबाके मुनीमका रूप धारण किया और पठानके पास जाकर ठीक निश्चित दिनपर हिसाब करनेकी प्रार्थना की। पठानके आश्चर्यका ठिकाना न था। वह सोचने लगा कि इस दुर्भिक्षमें विसोबाको किसने रुपये दिये। परंतु मुनीमने कहा कि विसोबाकी साख उसकी सचाईके कारण सदा बनी हुई है। कई आदमियोंके सामने सारा हिसाब हुआ और मुनीमने पाई-पाई चुका दिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल विसोबाने पाठ करनेके लिये गीताकी पोथी खोली तो देखता क्या है कि उसका लिखा हुआ पुरनोट फटा हुआ उसकी पोथीमें पड़ा हुआ है। उसे बड़ा ही आश्चर्य हुआ। वह सीधे पठानके पास पहुँचा और अपनी असमर्थता प्रकट करने लगा। पठानको कुछ समझमें नहीं आ रहा था। उसने कहा—आप नाहकमें परेशान क्यों हो रहे हैं? कल ही तो आपके मुनीमजी आये थे और मेरा हिसाब चुकता कर गये। विश्वास न हो तो गाँवके और भी कई आदमी उस समय उपस्थित थे, आप उनसे पूछ लें। गाँवके लोगोंकी शहादत मिलनेपर भी विसोबाको आश्चर्य ही हुआ—वे कुछ समझ नहीं सके। सीधे घर लौटे और अपने मुनीमसे पूछने लगे—भाई! मुझे भरमाओ मत, ठीक-ठीक कहो। तुम कल पठानके यहाँ कब गये और किस तरह मेरे हिसाबके रुपये चुका आये। मुनीम बेचारा हक्का-बक्का रह गया। कहता तो क्या? ना, महाराज! मैं सच कहता हूँ।

आपके चरणोंकी शपथ, मैं इस बारेमें कुछ भी नहीं जानता, मैं पठानके यहाँ गया ही नहीं, आप विश्वास मानिये।

अब विसोबाकी आँखें खुलीं! सहसा उनके मुखसे निकल पड़ा—हे दीनबन्धो! हे दयासागर! कैसे विचित्र हैं तुम्हारे खेल! मेरे साथ तुम यह कैसा खेल खेल रहे हो? मैं अधम...!! विसोबाका गला भर आया, वाणी रुक गयी, वे फूट-फूटकर रोने लगे!!

जिस प्रभुको मुझ अधमके कारण इतना कष्ट उठाना पड़ा अब उसे छोड़कर कहाँ भटकता फिरूँ—यह सोच विसोबा सीधे पण्ढरपुर आये और अपना जीवन एकमात्र हरि-भजनमें व्यतीत करने लगे। हृदयमें हरिका नित्य ध्यान हो, मुखसे उनका नाम-कीर्तन हो, कानोंमें सदा उन्हींकी कथा गूँजती रहे, प्रेमानन्दसे उन्हींकी पूजा हो, नेत्रोंमें उनकी ही मूर्ति विराज रही हो, चरणोंसे उन्हींके स्थानकी यात्रा हो, रसनामें उन्हींके चरणोदकका रस हो, भोजन हो तो बस उन्हींका प्रसाद हो, साष्टाङ्ग नमन हो उन्हींके प्रति, आलिङ्गन हो आह्लादसे उन्हींके भक्तोंका और एक क्या, आधा पल भी उनकी सेवा विना व्यर्थ न जाय। सब धर्मोंमें यही श्रेष्ठ धर्म है और इसीमें विसोबाका सारा समय बीतने लगा।

विसोबा पीछे श्रीज्ञानेश्वर-मण्डलमें सम्मिलित हुए। योगका ज्ञान प्राप्त किया और सिद्ध महात्माओंमें इनकी गणना होने लगी। वे श्रीज्ञानेश्वर महाराजको अपना गुरु मानते थे। उन्होंने अपने एक अभंगमें स्पष्टतः लिखा है कि मेरे गुरु हैं श्रीज्ञानेश्वर, जो

महाविष्णुके अवतार हैं। एक स्थानपर उन्होंने यह भी लिखा है कि 'चांगदेवको मुक्ताबाईने अङ्गीकार किया और सोपानदेवने मुझ-पर दया की; अब जन्म-मरणका भय नहीं रहा।' श्रीज्ञानेश्वर और सोपानदेव दोनोंको ही ये गुरु मानते थे।

नामदेवको प्रभु श्रीपाण्डुरङ्गने आदेश किया कि विसोवासे जाकर दीक्षा लो। ये विसोबा वही हैं। जब नामदेवजी इनके पास आये तो ये अन्तर्ज्ञानसे उनका आना जानकर जान-बूझकर शिवलिङ्गपर पैर पसारे पड़े थे। नामदेवको इससे बड़ा आश्चर्य हुआ। पड़े-ही-पड़े इन्होंने कहा—रे नमिया! मैं बूढ़ा हो गया हूँ, पैर मुझसे अब उठते नहीं, एक काम कर। तू इन्हें उठाकर ऐसी जगह रख दे जहाँ शिवलिङ्ग न हो। नामदेवने पिण्डिकापरसे इनके पैर हटाकर नीचे रक्खे, परंतु जहाँ भी पैर रक्खा वहीं पिण्डिका निकल आयी। नामदेव अब समझे। उन्होंने गुरुचरणोंको पकड़ लिया, शरणागत हो गये। विसोबाने तब नामदेवको स्वरूप-साक्षात्कार कराया। नामदेवजीने अपने अभंगोंमें इन सद्गुरु श्रीविसोबाकी बड़ी महिमा गायी है। कहा है कि ऐसे सद्गुरुके चरण कभी न छोड़े। 'ये मेरी मैया हैं जिन्होंने मेरे ऊपर अपने कृपा-छत्रसे छाया की है।'

क्यों न हो, ऐसे गुरुदेवको पाकर कोई भी धन्य हो सकता है। नामदेव तो नामदेव ही थे।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

भक्त नामदेव

दक्षिण हैदराबादमें नरसी ब्राह्मणी नामक एक गाँव है। वहीं दामा सेठ नामक परम भगवद्भक्त दर्जी (छींपी) रहते थे। उनकी धर्मपत्नीका नाम गोड़ाई था। भक्तश्रेष्ठ नामदेवजी इसी दम्पतिके पुत्ररत्न हैं। विक्रम संवत् १३२७ के कार्तिक शुक्ला १ रविवारके दिन सूर्योदयके समय नामदेवजीका जन्म हुआ। ये पूर्वसंस्कार-वश जन्मसे ही भगवद्भक्त थे। नामदेवजीके पूर्वज यदु सेठजी अत्यन्त सरल प्रकृतिके सदाचारी एवं पण्ढरपुरके भगवान् श्रीविट्ठल-के एकनिष्ठ उपासक थे। दामा सेठ उन्हींकी पाँचवीं पीढ़ीमें हुए। नामदेव-सरीखे परम भागवतका जन्म ऐसे ही पुनीत कुलमें हुआ करता है।

माता-पिता ही बालकके सर्वप्रथम गुरु होते हैं। उन्हींकी बातोंका अनुकरण बालक किया करता है। नामदेवजीके माता-पिता भगवद्भक्त थे, वे निरन्तर भगवान्के नाम और गुणोंका गान किया करते थे। नामदेवजी भी उनसे भगवन्नाम सुन-सुनकर वही सीखने लगे। श्रीविट्ठलकी मूर्ति, विट्ठलका नाम, विट्ठलकी जय-जयकार और विट्ठलकी पण्ढरी नगरीके निरन्तर श्रवण, मनन और निदिध्यासनसे नामदेव विट्ठलमय हो गये थे। नामदेवकी दृढ़ श्रद्धा हो गयी थी कि श्रीविट्ठलमूर्ति चैतन्य है और वही सच्चे भगवान् हैं।

एक समय इनके पिताको कार्यवश कहीं बाहर जाना पड़ा। वे जाते समय नामदेवपर भगवान् विट्ठलकी पूजाका भार सौंप गये!

लड़कपनकी सरल श्रद्धासे नामदेव पूजाका सामान और नैवेद्यके लिये कटोरीमें दूध लेकर भगवान्‌के सामने पहुँचे। सहज श्रद्धासे भगवान्‌की पूजा समाप्त कर दूधकी कटोरी भगवान्‌के सामने रखकर उसे पीनेके लिये भगवान्‌से कहने लगे। परन्तु भगवान् भी बड़े हठीले होते हैं, बालककी सीधी-सादी वाणीपर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। नामदेवजीने कुछ देर आँखें बंद रखकर जब खोलीं, दूधको ज्यों-का-त्यों कटोरीमें पड़े देखा, इससे उनके मनमें कुछ दु:ख हुआ। नामदेवजी सोचने लगे कि मुझसे ऐसा क्या अपराध हो गया है कि विट्ठल भगवान् मेरा निवेदन किया हुआ दूध नहीं पीते। वे बराबर दूध पीनेके लिये आग्रहपूर्ण निवेदन करने लगे, परंतु जब भगवान्‌ने उनका दूध ग्रहण नहीं किया तो उनको बड़ा दु:ख हुआ, आँखोंमें प्रेमकोपसे आँसू भर आये। उन्होंने कहा कि 'विट्ठल! यदि आप मेरी कटोरीका दूध न पीयेंगे तो याद रखिये, मैं भी जीवनभर कभी दूध नहीं पीऊँगा।' इस बाल-प्रतिज्ञाने बड़ा काम किया। नामदेवने भगवान्‌की मूर्तिको पाषाणकी मूर्ति नहीं समझा था। उसके मन तो वे साक्षात् सच्चिदानन्दघन परमात्मा थे। हम चैतन्यको न मानकर ही मूर्ति-पूजा करते हैं, इसीसे भगवान् चैतन्यरूपसे हमारे सामने प्रकट नहीं होते। नामदेवजीने चैतन्य मानकर हठ किया। अतः उसी समय भगवान्‌को साक्षात् प्रकट होना पड़ा। भगवान्‌ने भक्तिप्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ दूध ग्रहण किया। भगवान्‌की प्रतिज्ञा ही ठहरी—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

(गीता ९। २६)

भगवान्‌से नामदेवजीकी पूरी जान-पहचान हो गयी। अब वे जो कुछ भी भगवान्‌को अर्पण करते, भगवान् प्रकट होकर उसे ग्रहण करते। इस प्रकार उनकी भक्तिका रंग दिनोंदिन गहरा होता गया। वे नौ सालकी उम्रमें ही वारकरी भक्तमण्डलीमें बालभागवत गिने जाने लगे।

उस समयकी सामाजिक प्रथाके अनुसार नामदेवजीका विवाह गोविन्द सेठ सदावर्तेकी लड़की रजाईके साथ छोटी उम्रमें कर दिया गया था। परंतु ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती गयी त्यों-ही-त्यों उनकी भक्ति भी विशुद्ध होकर बढ़ती गयी। गृहस्थीके कार्योंमें उनका मन नहीं लगता था। उनकी स्त्री और माता व्यापार-धन्धा करनेके लिये उनसे कहा करतीं, परंतु उनके लिये हरि-कीर्तन छोड़कर और किसी भी काममें लगना असम्भव-सा हो गया। पण्ढरपुरके भक्तमण्डलमें नामदेवजीकी खूब प्रसिद्धि हो गयी। अब नामदेवजी नरसी ब्राह्मणी गाँवको छोड़कर पण्ढरपुरमें जाकर रहने लगे। यहाँ गोरा कुम्हार, साँवता माली आदि भक्तोंसे इनकी प्रीति हो गयी। सब मिलकर भक्तिरसमें सराबोर हुए भजन-कीर्तन करने लगे।

पण्ढरपुरमें हरिशयनी और हरिबोधिनी एकादशीको बड़ा भारी मेला लगा करता है। उस दिन भगवान्‌के दर्शनके लिये प्रायः सभी वारकरी संत पण्ढरपुर जाते हैं और भक्ति-प्रेम तथा सत्सङ्गका आनन्द लूटकर अपने-अपने स्थानको लौटते हैं; परंतु नामदेवजीकी स्थिति वैसी नहीं थी। उन्होंने पण्ढरपुरको अपना निवासस्थान ही बना लिया था, जिससे उन्हें चन्द्रभागा-नदीका

स्नान, पुण्डलीक भक्त तथा उनके भगवान् पाण्डुरङ्ग विठ्ठलरायके दर्शन, निरन्तर आने-जानेवाले वैष्णव भक्तोंका सङ्ग तथा महाद्वार और चन्द्रभागा नदीके रेतीले मैदानमें चलनेवाले कथा-कीर्तनमें विभोर रहनेका सौभाग्य प्राप्त था। विठ्ठलके लिये तो वे ऐसे बन गये थे कि दिन-रात भीतर-बाहर केवल भगवान्‌के साथ ही क्रीडा करते थे। भगवान् विठ्ठलके प्रति उनकी अनन्य भक्ति थी। वे उन कटिपर हाथ रक्खे इंटपर खड़े पण्ढरीनाथ विठ्ठल भगवान्‌के ध्यानमें मस्त रहते थे। पण्ढरपुरमें लेनेमें और देनेमें विठ्ठलका नाम ही लिया जाता है। विठ्ठलके नामसे ही सारे काम करने होते हैं, इस प्रकार विठ्ठलनामरूपी सुखका लेन-देन वहाँ चला करता है, जिससे सम्पूर्ण कार्य भगवन्नाम-स्मरण करते हुए ही करनेकी शिक्षा मिलती है। वहाँ भक्तभावन भगवान् अपने भक्तोंकी सम्पूर्ण इच्छाएँ पूर्ण कर देते हैं। जो इन पण्ढरीनाथके दर्शन करते हैं, उनको ये पुरुषोत्तम कभी नहीं भूलते। इस प्रकारका ब्रह्मानन्द अन्य स्थानमें कहाँ है ? पण्ढरपुर-क्षेत्र भगवान्‌के सुदर्शन-चक्रपर बसा हुआ है। जो लोग हरिबोधिनी और हरिशयनीके दिन भगवान्‌के दर्शनके लिये उत्कण्ठित रहते हैं, त्रिलोकेश्वर चक्रपाणि भगवान् इंटपर खड़े उनकी बाट देखा करते हैं। श्रुतिके लिये अगम्य देव पण्ढरपुरमें अति सुलभ हैं। उनका रूप मधुर है, उनका नाम मधुर है, उनका यश मधुर है—उनका सब कुछ मधुर-ही-मधुर है। यही नामदेवकी विट्ठल-उपासनाका रहस्य है।

एक स्थानमें नामदेवजीने कहा है कि 'हे पुरुषोत्तम! आपके

प्रेमसे मैं स्वयं खिच आया हूँ, मेरा और आपका सम्बन्ध शरीर और आत्मा-जैसा है, मगर ये दोनों भी आप ही हैं।' इस प्रेमभरे वर्णनमें एक यह रहस्य है कि नामदेवजीका भक्तिके साथ ही अद्वैत ज्ञानपर भी पूरा अधिकार था।

उनके अभंगोंमें कहीं-कहीं भगवान्‌के साथ प्रेमकलह भी दिखायी पड़ती है। बिना प्रेमके ऐसी कलह नहीं होती और यदि होती है तो उसका कुछ भी मूल्य नहीं है। नामदेवजीने एक अभंगमें कहा है—'आपके नामकी महिमा भक्तोंने ही बढ़ा दी है। अनेक नाम-रूपोंके अलंकार, उन्होंने ही आपको पहना दिये हैं, वास्तवमें आप तो नाम-रूप और जाति-कुलसे हीन ही हैं। ये सब आपको भक्तोंसे ही प्राप्त हुए हैं। भक्तोंके कारण ही आप भक्त-वत्सल कहलाते हैं। आपका बड़प्पन हमारे ही कारण है। हम जैसे आपके लिये पागल हो रहे हैं, वैसे ही आपको भी हमारे लिये पागल हो जाना चाहिये। यदि न हों तो भी हमारी क्या हानि है ? हमारे प्रेम-सुखको तो आप हरण कर ही नहीं सकते ?' नामदेवकी प्रेमकलहका यह एक छोटा-सा नमूना है।

ईश्वरप्रेमकी प्रबलता, भावनाकी तीव्रता और सर्वस्व अर्पण, इसीमें आत्मनिवेदनकी परिपूर्णता है। जाग्रत्-स्वप्नादि सर्व अवस्थाओंमें भगवान्‌के सिवा कुछ भी प्रिय न लगना, 'तच्चिन्तनं तत्कथनमन्योन्यं तत्प्रबोधनम्' इस उक्तिके अनुसार भगवान्‌के गुणानुवादमें ही निमग्न रहना और शरीर-वाणीसहित मनका भगवत्प्रेममें घुल जाना ही भक्ति है। इस प्रकारका दुर्लभ प्रेम भगवान्‌की कृपासे ही मिलता है।

अभ्यास करके मनुष्य इसे नहीं पा सकते। भगवान्‌की कृपासे ही एकमात्र भगवान्‌में प्रियतमभाव उत्पन्न होता है, जिसके मन भगवान् प्रियतम हो जाते हैं, उसे फिर भगवान्‌का स्थान, भगवान्‌की मूर्ति, भगवान्‌के गुणानुवाद, भगवान्‌के भक्त, भगवान्‌के नाम, भगवान्‌की चर्चा आदि भगवत्सम्बन्धी प्रत्येक वस्तु अति प्रिय हो जाती है। ईश्वरप्रेमके निरतिशय सुखका लोभी मनुष्य उस सुखको पलभरके लिये भी नहीं छोड़ सकता। नामदेवजीके सारे अभंगोंमें इसी प्रकारका महान् प्रेम भरा है।

संत स्वभावतः उदारहृदय हुआ करते हैं। वे किसीकी निन्दा नहीं करते, परंतु पाखण्डियोंका दम्भ दिखलाकर साधकको सावधान करनेके लिये उनके दुर्गुणोंका दिग्दर्शन उन्हें कराना पड़ता है और ऐसा नामदेवजीने भी किया है।

प्रसिद्ध संत श्रीज्ञानेश्वर महाराजको एक बार नामदेवके सङ्गकी इच्छा हुई। उन्होंने नामदेवजीको तीर्थयात्रामें साथ चलनेको कहा। नामदेवजीने कहा कि आप मुझे भगवान्‌से आज्ञा दिला दें तो मैं चल सकता हूँ। ज्ञानेश्वरजी नामदेवके सङ्गकी इच्छा करते हैं, यह जानकर भक्तवाञ्छाकल्पतरु भगवान्‌ने नामदेवकी प्रशंसा करके ज्ञानेश्वरजीसे कहा—'नामदेव मेरा बड़ा लाड़ला है। मैं क्षणभरके लिये भी इसे दूर करना नहीं चाहता। तुम चाहते हो तो इसे ले जा सकते हो, परंतु इसकी सँभाल रखना।' इतना कहकर भगवान्‌ने ज्ञानेश्वरजीको नामदेवजीका हाथ पकड़ा दिया।

नामदेवजीके साथ ज्ञानेश्वरका मिलन ऐसा ही था जैसा ऐकान्तिक भक्तिके साथ सर्वव्यापी ज्ञानका सम्मेलन !

नामदेवजी ज्ञानेश्वरजीके साथ भगवच्चर्चा करते हुए जाने लगे, परंतु उनका चित्त तो श्रीपाण्डुरङ्गके चरण-कमलोंमें ही अटक रहा था। वे कहते थे 'हे पाण्डुरङ्ग! तुम्हारे वियोगसे मेरा हृदय फटा जा रहा है। मुझे बड़ा उद्वेग हो रहा है। मेरे तो तीर्थ-व्रत, धर्म-अधर्म, सब कुछ तुम ही हो।' ज्ञानेश्वर महाराज उन्हें बहुत प्रकार-से सान्त्वना देकर कहते कि 'तुम धन्य हो जो ऐसा प्रेम तुम्हें प्राप्त हुआ है। तुम व्यर्थ शोक क्यों करते हो ? भगवान् सर्वव्यापी हैं, तुम्हारे हृदयमें भी तो हैं।' नामदेवजी कहते 'आपका कहना यथार्थ है, परंतु मुझे तो पुण्डलीकके पास खड़े पाण्डुरङ्गको देखे बिना कल नहीं पड़ती।' उनके इस अनन्यभावको देखकर ज्ञाने-श्वरजी बड़े प्रसन्न होते थे।

एक समय ज्ञानेश्वरजीने नामदेवसे पूछा कि 'भजन किस प्रकार करना चाहिये ? मन, बुद्धिको सात्त्विक कैसे बनाया जा सकता है ? श्रवणादि साधनोंका मर्म क्या है ? भक्ति और ध्यान क्या है ?' इन प्रश्नोंको सुनते ही विनयकी मूर्ति नामदेवजीने गद्गद होकर ज्ञानेश्वरजीके चरण पकड़ लिये और कहा कि मुझे तो पाण्डुरङ्गकी कृपाका ही भरोसा है। ऐसा ज्ञान मेरे भाग्यमें कहाँ ! मुझमें न ज्ञान है, न मैं बहुश्रुत हूँ, इसीलिये तो भगवान्ने मुझे आपके हाथ सौंप दिया है। आपका पूछना तो ऐसा है जैसा कल्पवृक्षका किसी दीनके पास याचना करना, अथवा कामधेनुका

किसी दरिद्रके पास दैन्य प्रकट करना। मालूम होता है आप विनोदसे ऐसे प्रश्न पूछकर मेरा सुख बढ़ाना चाहते हैं।' इसपर ज्ञानेश्वरजीने कहा, 'मैं तुम्हारे मुखसे अनुभूत साधन सुनना चाहता हूँ। तुम तो भगवान्के प्रेम-भण्डारी हो। तुम्हारी रसपूर्ण बातोंको सुननेके लिये मेरे कान उत्सुक हो गये हैं। इसलिये मुझे अपने अनुभवकी बातें जरूर बतलाओ।' ज्ञानेश्वरकी इस आज्ञाको पाकर नामदेवजी कहने लगे—

मैं क्या कहूँ, मुझे तो नाम-संकीर्तन ही प्रिय है। उसके सामने दूसरे साधन व्यर्थ और कष्टप्रद प्रतीत होते हैं। यही भजन है। गुण-दोषोंको न देखकर सभीके साथ सच्ची नम्रताका व्यवहार करना ही वन्दन है। इससे अन्तःकरण सदा प्रसन्न रहता है और सात्त्विकता प्राप्त होती है। समस्त विश्वमें एकमात्र मेरे विट्ठलको देखना और भगवान्के चरणोंका हृदयमें अखण्ड स्मरण करना ही उत्तम ध्यान है। जिस प्रकार हरिण नादसे मोहित होकर देहकी सुधि भूल जाता है, वैसे ही मुखसे उच्चारण किये जानेवाले नाम-स्मरणमें मनको दृढ़तासे लगाये रखकर, तल्लीन हो जाना ही प्रेमयुक्त श्रवण है। भृङ्गकीटन्यायसे भगवच्चरणोंका दृढ़ अनुसन्धान ही उत्तम निदिध्यासन है। सर्वभावसे एकमात्र विट्ठलका ही ध्यान, सब भूतोंमें उन्हींके स्वरूपका अवलोकन, रज और तमसे रहित होकर सबसे आसक्ति हटाकर केवल प्रेम-सुधाका पान करना ही भक्ति है। अनुरागसे एकान्तमें गोविन्दका ध्यान करनेके सिवा अन्य कहीं भी विश्राम नहीं है। इन वचनोंको भी परम उदार, सर्वज्ञ मेरे पाण्डुरङ्गने ही मुझसे कहला दिया है। नामदेव-की इस दिव्य वाणीको सुनकर ज्ञानेश्वरजी बहुत ही प्रसन्न हुए।

इस प्रकार तीर्थयात्रा करते हुए प्रभास, द्वारिका आदि क्षेत्र और अन्यान्य मोक्षपुरियोंके दर्शन कर दोनों ज्ञानी भक्त लौट रहे थे। रास्तेमें बीकानेरके समीपवर्ती कौलायतजी नामक गाँव आ गया। दोनोंको बड़ी प्यास लगी थी। पासमें ही एक कुआँ था, परंतु वह सूखा था, ज्ञानेश्वरजी सिद्धिप्राप्त योगी थे। उन्होंने लघिमा-सिद्धिके द्वारा कुएँके भीतर जमीनमें प्रवेशकर जल पी लिया और नामदेवजीके लिये जल लेकर वे ऊपर आ गये। परंतु नामदेवजीने वह जल नहीं पीया, वे भावमग्न हुए कह रहे थे कि 'क्या मेरे विट्ठलको मेरी चिन्ता नहीं है।' भगवान् तो भक्तकी सेवाका अवसर ही ढूँढ़ा करते हैं, फिर ऐसे समयपर वे कैसे चूकते। भगवत्कृपासे कुआँ जलसे भरकर बह निकला। भक्तके प्रेम-बन्धनका प्रभाव देखकर ज्ञानेश्वरजी भी आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने नामदेवको सचेत किया और गाढ़ आलिङ्गनकर वे उनके प्रेमकी प्रशंसा करने लगे। नामदेवने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। कुछ दिनोंमें यात्रा पूर्ण करके दोनों लौट आये।

नामदेव अपने प्राणोंसे भी प्यारे विट्ठलसे मिले और कहने लगे कि 'मेरे मनमें भ्रम था इसीलिये आपने मुझे दर-दर भटकाया। परंतु भगवन्! निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि पण्ढरपुरका-सा सुख अन्यत्र स्वप्नमें भी नहीं है। संसारमें अनेक तीर्थ हैं परंतु मेरा मन तो चन्द्रभागाकी ओर ही लगा रहता है, आपके विना अन्य देवकी ओर मेरे पैर चलना ही नहीं चाहते, मेरे कान दूसरे किसीके यश-को सुनना नहीं चाहते। जहाँपर गरुड़चिह्नाङ्कित पताकाएँ नहीं हैं

वह स्थान कैसा ? जहाँ पर वैष्णवका मेला न हो तथा अखण्ड हरि-कथा न चलती हो, वह क्षेत्र भी कैसा ? ये सारी बातें पण्ढरपुरमें विट्ठलके चरणोंमें हैं, इसलिये मैं आपके सिवा कुछ भी नहीं जानता हूँ। परंतु आपने मुझपर बड़ी कृपा की जो सर्वत्र मेरे लिये पण्ढरपुर कर दिया और याद करते ही मुझे दर्शन देते रहे !'

ज्ञानेश्वरजीके समाधि लेनेके बाद फिर एक बार नामदेव उत्तर भारतमें गये थे। नामदेवको विसोबा खेचरसे पूर्णज्ञानका बोध हुआ था। इसलिये उन्हींको वे अपना गुरु मानते थे।

नामदेवजीकी आयुका पूर्वार्द्ध पण्ढरपुरमें और उत्तरार्द्ध पंजाब आदि प्रान्तोंमें भक्तिका प्रचार करनेमें बीता। आपकी भक्ति बहुत ही उच्च कोटिकी थी।

भगवान्‌ने उस महात्मा भक्तको बहुत ही दुर्लभ बतलाया है जो सर्वत्र सबमें भगवान्‌को ही देखता है। वास्तवमें वही मनुष्य धन्य है, जो सर्वत्र भगवद्दर्शनका अभ्यास करता है और उसमें सफल हो जाता है। श्रीनामदेवजीमें यह सर्वत्र भगवद्दर्शनकी निष्ठा बहुत ही अच्छे स्वरूपमें प्रकट थी। वे जहाँ कहीं रहते, जिस किसी भी चीजको देखते, उनके मनमें भगवान्‌के सिवा अन्य कुछ भी नहीं दीखता। उनके जीवनकी इस बातको पुष्ट करने-वाली घटनाओंमेंसे कुछ नीचे लिखी जाती हैं।

(१) एक समय नामदेवजीकी कुटियामें आग लग गयी। आग एक तरफमें थी। आप प्रेममस्त हुए दूसरी तरफ रक्खी हुई चीजोंको उठा-उठाकर आगमें फेंकने लगे और कहने लगे कि

'प्रभो ! खूब आये । आज तो लाल-लाल लपटोंसे लपलपाते हुए आये । परंतु एक ही ओर क्यों आये ? एक तरफकी चीजोंको आपने ग्रहण किया, दूसरी ओरकी चीजोंने क्या पाप किया जो आपकी कृपासे ये वञ्चित रहीं । प्रभो ! इन्हें भी ग्रहण कीजिये ।' यों कहकर लगे कीर्तन करने और नाचने । कुछ देरमें आग बुझ गयी । नामदेव कुटिया बिना हो गये । वर्षाकाल था, कहाँ रहें ! भगवान्‌ने स्वयं मजूर बनकर बात-की-बातमें नामदेवजीकी कुटिया बनाकर उसपर छान छा दी, तबसे आप नामदेवजीकी छान छा देनेवाले मशहूर हुए ।

(२) एक समय आप किसी गाँवमें जा निकले और वहाँ एक सूने मकानमें ठहर गये । उसमें कोई ब्रह्मराक्षस रहता था । लोगोंने कहा, महाराज ! इस घरमें न रहिये, इसमें भूत रहता है और वह आधी रातको आकर इसमें रहनेवालेको मार डालता है । नामदेवजी सबमें भगवान् देखते थे । उन्होंने कहा, भूत भी तो मेरे विट्ठल ही बने होंगे ! उन्होंने निर्भयतासे मुसकरा दिया और वहीं टिक गये । आधी रातका समय हुआ । भूत आया । उसका शरीर बहुत ही लंबा-चौड़ा और सूरत भयावनी थी । नामदेवजीने उसे देखते ही भगवद्भावसे प्रणाम करके यह पद गाया और कीर्तन करके नाचने लगे—

भले पधारे लंबकनाथ !

धरनी पाँव, स्वर्ग लौं माथा, जोजन भरके लाँबे हाथ ॥
सिव सनकादिक पार न पावैं, अनगिन साज सजाये साथ ।
नामदेवके तुम ही स्वामी, कीजै मोकौं आज सनाथ ॥

जब यह पद गावत भये, तब वह प्रेत तुरंत।
पाय चतुर्भुज रूप तहँ भयो बिकुंठ वसंत॥
(भक्तमाल रीवाँमहाराजकृत)

प्रेत तुरंत भगवद्रूपमें परिणत हो गया। नामदेवजीके मन तो वह पहले भी भगवान् ही था।

(३) एक बार नामदेवजी किसी जंगलमें पेड़के नीचे रोटी बना रहे थे। रोटियाँ बनाकर रक्खी थीं और आप लघुशंकाको गये। इतनेमें एक कुत्ता आया और रोटियाँ मुँहमें उठाकर भाग चला, इतनेमें नामदेवजी आ गये। सबमें भगवान् देखनेवाले भक्तश्रेष्ठ घीकी कटोरी हाथमें लेकर यह पुकारते हुए कुत्तेके पीछे दौड़े कि 'भगवन्! रोटियाँ रूखी हैं, अभी चुपड़ी नहीं हैं। मुझे घी लगाने दीजिये, फिर भोग लगाइये।' भगवान्ने कुत्तेका रूप त्यागकर शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये अपने दिव्य चतुर्भुज-रूपमें उन्हें दर्शन दिया।

नामदेवजीकी भक्ति कितनी ऊँची बढ़ी हुई थी। इसका अनुमान उपर्युक्त घटनाओंसे किया जा सकता है। अनेक लोगोंको भक्ति-मार्गमें लगाकर वि० सं० १४०७ में ८० वर्षकी अवस्थामें आप नश्वर शरीरको त्यागकर परमधाम पधारे। महाराष्ट्रमें नामदेवजी वारकरी पन्थके एक प्रकारसे संस्थापक ही कहे जा सकते हैं।

वोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

भक्त राँका-बाँका

पण्ढरपुरमें लक्ष्मीदत्तजी नामक एक ऋग्वेदी महाराष्ट्र ब्राह्मण रहते थे। वे स्त्रीसहित भगवान् और भगवद्भक्तोंकी सेवामें रत रहते थे। एक बार भक्तवाञ्छाकल्पतरु भगवान्ने उनके घरपर संतरूपसे पधारकर और उनकी सेवासे प्रसन्न होकर वरदान दिया कि तुम्हारे यहाँ एक महान् भक्त पुत्र होगा।

तदनुसार वि० सं० १३४७ मार्गशीर्ष शु० २ गुरुवारको धनलग्नमें श्रीमती रूपादेवीके गर्भसे श्रीराँकाजीका जन्म हुआ और उसी प्रकार श्रीबाँकाजीका जन्म सं० १३५१ वैशाख कृष्ण ७ बुधवारको कर्कलग्नमें पण्ढरपुरमें ही हरिदेव ब्राह्मणके घरपर हुआ।

युवावस्था प्राप्त होनेपर भक्तवर राँकाजीका विवाह बाँकाजी-से हो गया। राँकाजी अत्यन्त रंक थे। इसीसे सुनते हैं, इनका नाम राँका पड़ गया था। राँकाजी कंगाल और अशिक्षित होनेसे जगत्की दृष्टिमें नगण्य होनेपर भी तीव्र वैराग्य और परम भक्तिके प्रभावसे परमात्माके बड़े प्रेमपात्र थे। राँकाजीकी स्त्री भी बड़ी साध्वी, पतिव्रता और भक्तिपरायणा थीं। वैराग्यमें तो वे राँकाजी-से भी बढ़कर थीं, दिन-रात पतिसेवा और भजन-ध्यान किया करती थीं। जंगलसे चुन-चुनकर दोनों स्त्री-पुरुष सूखी लकड़ियाँ ले आते और उन्हें बेचकर जो कुछ भी मिलता उसीसे भगवान्के भोग लगाकर प्रसाद पाते।

राँकाजीको स्त्रीसहित दुःख भोगते देखकर प्रसिद्ध सिद्ध भक्त नामदेवजीको बड़ा दुःख हुआ ।

उन्होंने राँकाजीको धन देनेके लिये भगवान्से प्रार्थना की । नामदेवजीको उत्तर मिला कि राँका कुछ भी लेना नहीं चाहता, तुम्हें देखना है तो कल प्रातःकाल वनके रास्तेपर छिपकर देखना । दूसरे दिन प्रातःकाल भगवान् जिस रास्तेसे राँकाजी अपनी स्त्रीसहित जंगलको जाया करते थे, उसी रास्तेपर मुहरोंकी एक थैली डालकर अलग खड़े हो गये ।

प्रातःकालका समय है । राँका-बाँका दोनों लकड़ियाँ लाने जंगल जा रहे हैं । भगवत्प्रेमके नशेमें मस्तीसे चलते हुए राँकाके पैरमें थैलीकी ठोकर लगी । राँकाने बैठकर देखा, मुहरोंसे भरी थैली है । राँका उसपर धूल डालने लगे । इतनेमें उनकी स्त्री भी आ गयी । उसने पूछा—'किस चीजको धूलसे ढँक रहे हैं ?' राँका-ने स्पष्ट उत्तर नहीं दिया । स्त्रीने फिर पूछा, तब राँकाने कहा, 'यहाँ एक मुहरोंकी थैली पड़ी है । मैंने सोचा कि तुम पीछेसे आ रही हो, कहीं मुहरोंके लिये मनमें लोभ पैदा हो जायगा तो अपने साधनमें विघ्न होगा; इसीलिये उसे धूलसे ढँक रहा था ।' परम वैराग्यवती स्त्री इस बातको सुनकर हँस पड़ी और बोली कि 'नाथ ! सोने और धूलमें भेद ही क्या है । आप धूलसे धूलको क्यों ढँक रहे थे ?' स्त्रीकी इस बातसे राँकाको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने कहा कि 'तुम्हारा वैराग्य बड़ा बाँका है । मेरी बुद्धिमें तो सोने-मिट्टीका भेद भरा है, तुम तो मुझसे बहुत आगे बढ़ गयी हो ।'

इस बाँके वैराग्यके कारण ही उनका नाम 'बाँका' पड़ा। भक्तवत्सल भगवान् छिपकर भक्तोंकी यह वैराग्यलीला देख-देख-कर मुदित हो रहे थे।

नामदेवजी तो राँका-बाँकाके वैराग्यको देखकर अपनेको तुच्छ मानने लगे और भगवान्से बोले—'प्रभो! जिसपर तुम्हारी कृपा-दृष्टि हो जाती है, तीनों लोकोंके राज्यपर भी उसका मन मोहित नहीं हो सकता। तुम्हारे सिवा उसे और कुछ भी नहीं सुहाता। जिसको अमृतका स्वाद मिल गया है, वह सड़े गुड़की तरफ क्यों ताकने लगा।

भक्तवत्सल भगवान्ने उस दिन राँका-बाँकाके लिये जंगलकी सारी सूखी लकड़ियोंके बोझे बाँधकर रख दिये। राँका-बाँकाने समझा कि किसी दूसरेने अपने लिये बोझे बाँध रक्खे होंगे। परायी चीज छूना पाप समझकर उन्होंने उस तरफ ताकातक नहीं और सूखी लकड़ियाँ न मिलनेसे दोनों खाली हाथ वापस लौट आये। उस दिन दम्पतीको उपवास करना पड़ा। उन्होंने विचार किया कि यह तो मुहरें आँखसे देखनेका फल है, हाथ लगानेपर तो न मालूम क्या होता।

अन्तमें भगवान्ने दया करके दम्पतीको अपना देवदुर्लभ दर्शन देकर उन्हें कृतार्थ और धन्य किया।

भक्तवर राँकाजी १०१ वर्षतक इस धराधामपर लीला करके सं० १४५२ की वैशाख शुक्ला पूर्णिमाको श्रीबाँकाजीके साथ परमधाम पधारे।

भक्त धनुर्दास

भक्तिमार्गके सुगम और सुलभ साधनोंमें कुछ ऐसे हैं जिनके द्वारा विषयोंमें लिप्त और भगवद्विमुख व्यक्ति भी सहजमें भगवद्भक्त हो जा सकता है। जैसे गाना सुनने, विचित्र आख्यानोंके कहने-सुनने एवं सुन्दर रूपके देखने आदिके ऐसे इन्द्रियोंके विषय हैं, जिनकी धाराएँ भगवान्‌की ओर फिरायी जा सकती हैं। कहीं-कहीं तो उक्त विषयलोलुपताकी बदौलत लोग स्वभावतः अकस्मात् भगवत्-कृपाके प्रभावसे भगवद्भक्त होते देखे गये हैं और कहीं-कहीं विशेष महात्माओं तथा संतोंके प्रयास और प्रसादसे। इस विषयके अनेक उदाहरण पौराणिक इतिहासों एवं भक्तमाल आदि भगवद्भक्तोंके चरित्र-ग्रन्थोंमें मिलते हैं। बहुधा प्रत्येक पहुँचे हुए

संत-महात्माके जीवनचरित्रमें ऐसी घटनाका एकाध उदाहरण अवश्य मिल जाया करता है। श्रीसम्प्रदायके प्रधान प्रवर्तक भगवान् श्रीरामानुजाचार्यजीके जीवनमें भी ऐसी कई घटनाओंके उदाहरण मिलते हैं जिनमेंसे एकका उल्लेख यहाँ किया जाता है।

मद्रासप्रान्तके त्रिचनापल्ली नामक नगरके पास उरयूर नामकी एक बस्ती है। इसका प्राचीन नाम निचुलापुरी है, यह श्रीवैष्णवोंका एक पवित्र स्थल है। यहीं आजसे कोई हजार वर्ष पहले धनुर्दास नामका एक नामी पहलवान रहता था। इसकी धाक सर्वत्र जम गयी थी, इसके एक परम सुन्दरी स्त्री थी। वह पहले तो वेश्या थी, पर पीछे वह धनुर्दासकी प्रेयसी बनकर घरमें ही रहने लगी। धनुर्दास अपनी उस प्रेयसीके रूप-माधुर्य और सौन्दर्यपर लट्टू हो रहा था। यहाँतक कि वह जहाँ जाता वहाँ अपनी उस प्रेयसीको भी अवश्य साथ लिये जाता। साथ भी सामान्य रीतिसे नहीं बल्कि वह जहाँ बैठता, उस स्त्रीको सामने बैठाकर एकटक उसके सौन्दर्यको निहारा करता। रास्तेमें चलनेपर उसे सामने करके, चाहे सवारीपर हो अथवा पैदल, आप अपने पीठकी रुख चलता था। उसका ऐसा व्यवहार देखनेवालोंके लिये एक तरहका कौतूहलजनक हो जाया करता था।

पाठकोंने दक्षिणके श्रीरंगक्षेत्र नामक प्रधान तीर्थका नाम सम्भवतः सुना होगा। यह श्रीरंगम्के नामसे प्रसिद्ध है। त्रिचनापल्लीके पास ही है। यहाँ प्रसिद्ध अर्चावतार भगवान् श्रीरङ्गनाथजीका मन्दिर है। यहाँ सालमें कई बार भगवान्का महोत्सव बड़े समारोहसे हुआ करता है। उत्सवोंमें लाखों दर्शनार्थियोंकी भीड़ हुआ

करती है। आस-पासके ही नहीं, दूर-दूरके दर्शनार्थी यात्री भी आया करते हैं। एक बारकी बात है। श्रीरङ्गनाथ भगवान्‌का वासन्ती महोत्सव (चैत्रोत्सव) चल रहा था। उत्सव आरम्भ हुए कई दिन बीत चुके थे। अब कुछ ही दिन बाकी थे। धनुर्दासकी प्रेयसीकी इच्छा भगवान्‌का यह उत्सव देखनेकी हुई। उसने धनुर्दाससे अपने मनकी यह अभिलाषा प्रकट की। फिर क्या था ! बात-की-बातमें निचुलापुरीसे श्रीरंगधामको चलनेकी तैयारी हो गयी। दोनों दम्पति अपने नौकर-चाकरोंके साथ श्रीरंगजीमें पहुँच गये। पहुँचनेपर भगवान्‌के दर्शनोंकी ठहरी। दोनोंने भगवान्‌के मन्दिरकी ओर प्रस्थान किया। कोई साढ़े नौ-दस बजे दिनका समय था। धनुर्दास अपनी प्रेयसीको सामने किये हुए पीठके रुख आगे बढ़ रहा था। गरमीका दिन था। धनुर्दास अपने हाथमें एक छाता लिये हुए उस प्रेयसीको कड़ी धूपसे बचानेकी धुनमें भी था। दक्षिणमें एक तो यों ही गरमी पड़ती है, फिर गरमियोंके दिनकी तो बात ही क्या। फिर चढ़ते सूर्यकी गरमी और जनताकी भीड़की गरमी। भला इतनी गरमीमें अपने शरीरकी सँभाल रखना उस देह कुचलनेवाली लाखोंकी भीड़में कोई हँसी-खेल न था; किंतु उस कड़ी धूपमें धनुर्दास अपनी प्रेयसीके प्रेम और सौन्दर्यपानमें मस्त मधुपानमत्त भ्रमरकी भाँति हाथमें छाता लिये अपनी पीठकी रुख चल रहा था। पीछे ऊँचा है या नीचा इसकी भी स्मृति उसके मनमें नहीं थी। स्वयं पसीने-से लथपथ था। देहतककी सुध नहीं। उस महोत्सवके अवसरपर श्रीरामानुजाचार्य स्वामीजी श्रीरंगधाममें ही निवास कर रहे थे। अपने कुछ अन्तरङ्ग शिष्योंके संग वह भी एक ओर भीड़में मन्दिर-

की ओर ही जा रहे थे। धनुर्दासकी इस कौतूहलोत्पादक करतूत-पर बहुधा कितने ही दर्शकोंकी दृष्टि पड़ती थी। पर वे इस दृश्यके देखनेमें अभ्यस्त थे। उनके लिये यह नया नहीं था। इसलिये सब कोई इसे देखकर नीची नजर किये अपनी राह चले जाते थे। किंतु श्रीरामानुज स्वामीजीके लिये यह दृश्य बिल्कुल नया था। उनकी दृष्टि पड़ते ही उन्होंने अपने एक शिष्यसे पूछा—'यह कौन है जो ऐसी निर्लज्जता दिखा रहा है?' शिष्यने कहा—'यह निचुला-पुरीका रहनेवाला धनुर्दास नामका प्रसिद्ध पहलवान है और वह उसकी भार्या है। उसका नाम हेमाम्बा है। वह पहले वेश्या थी, पर धनुर्दासने अपनी पत्नी बनाकर रख लिया है।' शिष्यकी बात सुनकर श्रीस्वामीजीने मन-ही-मन कुछ प्रसन्न होते हुए उस शिष्यसे फिर कहा—'तीसरे पहर उसे हमारे पास मठपर बुला लाना। बन पड़े तो अभी उससे जाकर कह आओ, जिसमें वह उस समय चलने-के लिये तैयार रहे।' बस, मुँह खोलनेभरकी देर थी। शिष्य धनु-र्दासके पास यह आदेश सुनानेको दौड़ गया और जाकर श्रीस्वामी-जीका यह संदेश भी सुना दिया। धनुर्दास तो सुनते ही काँप गया। काटो तो बदनमें लहू नहीं। वह अपने मनमें समझ गया—'श्री-आचार्य स्वामी हमारी इस निर्लज्जतापर बड़े बिगड़े होंगे। सम्भव है, उन्होंने हमारी भर्त्सना करनेके लिये ही मठपर बुलाया है। भला बिगड़नेकी तो बात ही है। जहाँ भगवान्‌का महान् उत्सव हो रहा है, देश-देशसे लाखोंकी संख्यामें लोग भगवान्‌के दर्शनोंकी लौ लगाये श्रद्धाके साथ आ रहे हैं, सबके भाव पवित्र हैं, सभी अपने

कलुषित भावोंको घरपर छोड़कर यहाँ आये हैं, इस भीड़में हमसे बढ़कर विषयी और पापकर्ममें लिप्त लोग भी होंगे, पर वे भी इस अवसरपर अपने सभी बुरे भावोंपर मिट्टी डालकर यहाँ शुद्ध हो भगवान्‌के दर्शनोंकी अभिलाषासे तन्मनस्क हो रहे हैं। एक मैं ही इस अपार भीड़में ऐसा हूँ जो स्त्रीके सौन्दर्यमें यहाँ भी गोते लगा रहा हूँ। धिक्कार है इस विषयलोलुपता और निर्लज्जतापर।' धनुर्दास यही सब बातें सोच रहा था। मठमें जाने और न जानेके बारेमें भी छः-पाँचमें पड़ा था। मनमें कहने लगा—जानेमें बड़ी झिड़की सहनी पड़ेगी और न जानेमें भी श्रीआचार्यस्वामीकी अवज्ञा होगी। अन्तमें उसने जाना ही निश्चित किया और उस शिष्यसे कहा—'अच्छा, महाराज! मैं प्रसाद पानेके बाद अवश्य श्रीचरणोंमें उपस्थित होऊँगा। आप श्रीस्वामीजी महाराजसे कह दें।' शिष्यने आकर श्रीरामानुज स्वामीजीसे सब बातें कह दीं। श्रीरामानुज स्वामी मन्दिरमें गये। आरतीके समय भगवान्‌से उन्होंने बड़ी करुणामें आकर प्रार्थना की—'भगवन्! दयामय! एक विमुख जीवको अपने सौन्दर्यसे सम्मुख कीजिये।' आरती हो जानेपर श्रीरामानुज स्वामी अपने मठमें आये।

भोजनके बाद अपने वचनके अनुसार ठीक समयपर धनुर्दास मठमें पहुँच गया। श्रीरामानुज स्वामीको खबर भेजी गयी। उन्होंने कहा—'अच्छा, मेरे पास उसे बुला लाओ।' जिस व्यक्तिको बुलानेके लिये कहा गया था उसने निवेदन किया—'स्वामिन्! वह भला मठके भीतर कैसे आवेगा? पहलवान तो अधिकतर हीनजातिके ही होते हैं।' श्रीस्वामीजीने कहा—'इसमें शङ्का-समाधान करनेका काम नहीं। हम जो कहते हैं सो करो।'

धनुर्दासने पहुँचकर साष्टाङ्ग किया और कुछ दूरपर हाथ जोड़े नीची नजर किये खड़ा रहा। उसके इस बर्तावपर श्रीरामानुज स्वामीने बड़े स्नेहसे कहा–'क्यों! हाथ जोड़े क्यों खड़े हो? आओ हमारे पास बैठो। तुमसे कुछ पूछना है। डरो मत। हम कुछ दण्ड तुम्हें थोड़े देंगे।' श्रीस्वामीजीकी इस स्नेहयुक्त बातचीतसे धनुर्दासको ढाढ़स हुआ। साहसकर थोड़ी दूर आगे सरककर बैठ गया। श्रीस्वामीजीने पूछा—'भला यह तो बताओ, उस स्त्रीको साथ लेकर इतनी निर्लज्जता और इस अनोखे ढंगसे रास्तेमें इतनी जनताकी भीड़में चलनेका क्या कारण? स्पष्ट कहो, छिपाना नहीं।' धनुर्दासका साहस और भी बढ़ा। वह निस्सङ्कोच होकर बोला—'महाराज! उसकी सुन्दरतापर मेरा मन मुग्ध रहता है। मेरे मनमें कामवासना विशेष कुछ नहीं। यों तो वह अब स्त्रीके स्थान है ही। पर मेरा-उसका साथ कामुकतासे नहीं, केवल उसकी अनूठी सुन्दरताके कारण है। उसका सुन्दर मुख और आँखें देखे बिना मैं बेचैन हो जाता हूँ। बस, यही यथार्थ बात है। महाराज जो चाहें, करें, पर उसका साथ न छुड़ावें।' श्रीस्वामीजीने कहा—'सो न होगा। हम तुमको उसे बिल्कुल छोड़नेको नहीं कहते। वह भार्याकी तरह तुम्हारे साथ रहे, पर तुम जो उसकी सुन्दरतापर इतने लट्टू हो रहे हो, सो न हो। अगर हम तुम्हें उससे भी कहीं बढ़कर सुन्दर मुख दिखलावें तो क्या तुम हमारी बात मानना मंजूर करते हो?' धनुर्दासने कहा—'क्यों नहीं। उससे सुन्दर मुखड़ा अगर देखनेको मिले तो मैं उसका बिल्कुल परित्याग करनेको तैयार हूँ।' श्रीस्वामीजीने

कहा—'हम तुम्हें उसका पूर्ण परित्याग करनेको नहीं कहते। ऐसा करनेसे अच्छा न होगा; क्योंकि वह वेश्यावृत्ति छोड़कर अब तुम्हारी स्त्री होकर रहती है, इससे एक प्रकारसे उसका सुधार ही हुआ। अब अगर तुम उसको छोड़ दोगे तो वह फिर वेश्यावृत्ति करने लगेगी। सो तो अच्छा न होगा। हम चाहते हैं, वह स्त्रीके रूपमें तुम्हारे ही यहाँ रहे, कोई आपत्ति नहीं, पर तुम इस निर्लज्जतासे उसपर मुग्ध न हो। तुम्हारा साथ रहनेसे उसका भी धीरे-धीरे सुधार हो जायगा। बोलो, मंजूर है न।' धनुर्दासने 'हाँ' कहते हुए सहर्ष स्वीकार किया। श्रीस्वामीजीने कहा—'अच्छा अभी जाओ। सन्ध्याको भगवान्‌की आरतीके समय मन्दिरमें हमसे मिलना। अकेले आना। हम वहीं रहेंगे। कोई रोक-टोक न करेगा। हम तुम्हारी प्रतीक्षामें अमुक स्थानपर रहेंगे।' धनुर्दास-ने साष्टाङ्ग कर घरका रास्ता लिया। राहमें मन-ही-मन कहने लगा—'समझा था, श्रीआचार्यस्वामी मुझे झिड़की देंगे, भला-बुरा कहेंगे, मेरी भर्त्सना और अपमान करेंगे। पर देखता हूँ, यहाँ तो दूसरा ही रंग-ढंग है। अच्छा, सन्ध्याको देखा जायगा।'

धनुर्दास घर पहुँचा। वहाँ अपनी भार्या हेमाम्बासे केवल इतना ही कहा कि श्रीआचार्यस्वामीने भगवान्‌के मन्दिरमें मुझे सन्ध्याको आरतीके समय दर्शनोंके लिये बुलाया है। हम अकेले ही जायँगे।

सन्ध्याको आरतीके अवसरपर धनुर्दास मन्दिरमें पहुँचा। श्रीरामानुजाचार्यके दर्शन हुए। वह पहलेसे ही इसकी बाट देख रहे थे। आरतीका समय हुआ। बाजा बजने लगा, श्रीरामानुज

स्वामीने धनुर्दाससे कहा—'खूब जी लगाकर भगवान्‌की झाँकीके दर्शन करना।' आरती होने लगी। धनुर्दास श्रीस्वामीजीके आदेशानुसार जी लगाकर भगवान्‌के दर्शन करने लगा। भगवान्‌के श्रीविग्रहके अनुपम सौन्दर्यपर उसकी आँखें ऐसी गड़ गयीं कि उसकी पलकें निर्जीव-सी निश्चल हो गयीं। वह भगवान्‌के रूप-माधुर्यमें ऐसा तन्मय होकर खड़ा था, मानो कोई चित्र खड़ा किया गया हो। आरती समाप्त होनेपर वह श्रीरामानुज स्वामीके चरणोंपर गिर पड़ा। साथ ही बहुत ही विह्वल स्वरसे कहने लगा—'स्वामिन्! इस अलौकिक सौन्दर्यके आगे उस स्त्रीका सौन्दर्य बिल्कुल कौड़ीका तीन है। अब आप जैसा कहें करनेको तैयार हूँ; किंतु अब ऐसा ही प्रबन्ध करें जिसमें यह सौन्दर्य नित्य देखनेको मिले।' श्रीस्वामीजीने कहा—'यह सब हो जायगा। इस समय घर जाकर अपनी स्त्रीसे सब बातें कह दो।' धनुर्दास घर आया। अपनी पत्नीसे उसने सब वृत्तान्त कह डाला। कुछ ही दिनों बाद दोनों दम्पति कुछ काल आगे-पीछे श्रीरामानुज स्वामीके चरणोंमें समाश्रित हो गये। निचुलापुरीका रहना छोड़ श्रीरंगधाममें श्रीस्वामीजीके मठके पास मकान लेकर दोनों बड़े आनन्दसे दिन बिताने लगे। श्रीस्वामीजीने दोनोंको अपने साम्प्रदायिक ज्ञानविषयोंमें बहुज्ञ बना दिया और दोनोंका आचरण भी आदर्श हो गया। धनुर्दासके गुणोंके कारण श्रीरामानुजाचार्यजीने ज्ञानकी कोई बात उसे बतानेमें कोर-कसर न की। धीरे-धीरे वह श्रीआचार्यस्वामीका परम अनुरक्त और विश्वस्त भक्त बन गया। उसका जीवन परम पवित्र बन गया। श्रीस्वामीजीका वात्सल्यस्नेह उसपर इतना बढ़ गया कि अपनी

वृद्धावस्थामें वह कावेरीसे स्नान करके लौटनेके समय उसीको टेककर मठतक या मन्दिरतक आते थे। इधरसे वह किसी ब्राह्मण शिष्यके सहारे जाते थे, पर लौटती बार धनुर्दासके सहारे आते थे। यही उनका नित्यका व्यवहार था। मठके ब्राह्मण शिष्यप्रभृति श्रीआचार्यस्वामीका यह व्यवहार देखकर मन-ही-मन कुढ़ने लगे। श्रीस्वामीजीके सङ्कोचके मारे उन्हें खुलकर इस विषयमें उनसे कहनेका साहस नहीं होता था। जब उन लोगोंसे रहा न गया, तब ढाढ़स बाँधकर एक दिन उस मण्डलीमेंसे एकने अगुआ बनकर श्रीस्वामीजीसे दबी जबानसे पूछा भी 'श्रीमहाराज! ऐसा क्यों करते हैं? आप स्नान करनेके उपरान्त धनुर्दासका स्पर्श क्यों करते हैं? आपके कैङ्कर्यके लिये हमलोग बराबर तैयार ही रहते हैं, तब ऐसा व्यवहार क्यों करते हैं?' श्रीरामानुज स्वामीने छूटते ही उत्तर दिया—'मैं तुमलोगोंके अभावसे ऐसा नहीं करता, बल्कि अपने हृदयका अभिमान दूर करनेके लिये ऐसा करता हूँ। धनुर्दासका आचरण हमारे यहाँके कतिपय ब्राह्मणोंसे कहीं उत्तम है।' यह मुँहतोड़ उत्तर सुनकर वे लोग ठक्क हो रहे। पर उनके हृदयकी जलन न बुझी, वे धनुर्दाससे कुछ डाह भी करने लगे। श्रीरामानुज स्वामीजी ताड़ गये। उन्होंने सोचा कि यह ईर्ष्याका अङ्कुर बढ़ जानेपर इनका सत्यानाश करेगा। इससे पहले ही इसको निर्मूल कर देना उचित है। यह सोच उन्होंने एक रात अपने एक अन्तरंग व्यक्तिसे चुपकेसे कहा कि आप उन समस्त ब्राह्मणशिष्योंके सूखते हुए कपड़ोंसे लगभग एक बित्ता फाड़कर हमें दे जायँ, पर यह बात किसीपर प्रकट न करें। उस सज्जनने ऐसा ही किया।

सबेरे सबने अपने कपड़े थोड़े फाड़े हुए देखकर आपसमें ही झगड़ा आरम्भ किया। झगड़ा यहाँतक बढ़ा कि परस्पर गाली-गलौजकी नौबत आ गयी। श्रीस्वामीजीके पास भी खबर गयी। उन्होंने सबको बुलाकर आश्वासन देते हुए कहा—'तुम्हें नये कपड़े मँगवा देते हैं। अब कृपा कर हमारी ओरसे क्षमा करो।' श्रीआचार्य-स्वामीके समझाने-बुझानेसे झगड़ा तो मिटा, पर यह बात बिल्कुल गुप्त रही। उसके थोड़े ही दिनों बाद उन्हीं शिष्योंमेंसे कुछ लोगोंसे स्वामीजीने कहा कि 'आज हम धनुर्दासको सन्ध्याके समय बहुत रात बीतेतक सत्संगमें बझा रक्खेंगे। तुमलोग खूब सावधानीसे उसके घर जाकर हेमाम्बाके गहने चुरा लाओ और चुपकेसे हमें दे दो।' उन शिष्योंने भी ऐसा ही किया। जब धनुर्दास श्रीआचार्य-स्वामीके पास ज्ञानचर्यामें बझा था, तब वे उसके घर पहुँचे। द्वारके किवाड़ खुले थे। भीतर घरमें अकेली हेमाम्बा सब आभूषण पहने हुए पलंगपर लेटी थी। अपने पतिदेवकी प्रतीक्षामें सोयी न थी। श्रीवैष्णवोंको रातके समय चुपकेसे घरमें घुसते देख वह समझ गयी कि ये लोग कुछ चुरानेकी नीयतसे ही यहाँ आये होंगे! इतना मनमें समझते ही वह नींदमें सोयीकी तरह खर्राटें लेने लगी। उसकी ऐसी बेसुध सोनेकी दशा देख इन लोगोंने उसके अंगके एक तरफके गहने उतार लिये। हेमाम्बाने मनमें सोचा, दूसरी तरफके गहने भी अगर ले लें तो अच्छा! यह सोचकर उसने करवट बदली; किंतु इन शिष्योंने समझा यह नींदसे जग जायगी तो ठीक न होगा ऐसा सोच ये लोग भागकर मठको चले आये। जब श्रीरामानुज

स्वामीने इन लोगोंको लौटकर आये जाना तब उन्होंने धनुर्दास-को घर विदा किया। फिर उन शिष्योंको बुलाकर उनसे गहने लेकर अलग छिपाकर रखवा दिये और बोले—'तुमलोग अब धनुर्दासके घरके बाहर जाकर इस बातका पता लो कि दोनों स्त्री-पुरुषोंमें क्या बात-चीत होती है ?' आदेशानुसार वे लोग गये और छिपकर इस बातकी टोह लेने लगे कि दोनों आपसमें क्या बातें करते हैं ? उन्होंने धनुर्दासको यह कहते सुना कि—'देखो। तुच्छ गहनोंके मोहमें तुमने यह क्या किया ? मालूम होता है, तुम्हारी धन-दौलतकी ममता अभी गयी नहीं है, इसीसे तुमने उन श्रीवैष्णव महानुभावोंको सब गहने नहीं लेने दिये।' इसपर हेमाम्बा अपने स्वामीसे बहुत विनती कर कहने लगी कि 'स्वामिन् ! मेरा तो सब कुछ श्रीभगवान्का ही है, मैं क्यों मोह करती ? मैंने तो करवट इसीलिये फेरी थी कि वे इस तरफके गहने भी उतार लेंगे; पर हमारे दुर्भाग्यसे वे चले गये। कृपा कर मेरा अपराध क्षमा करें, मैं अबसे ऐसी बातोंमें सावधान रहा करूँगी।' इतना सुन लेनेपर शिष्यलोग लौट आये और ज्यों-की-त्यों सब सुनी हुई बातें श्रीआचार्यस्वामीसे कह दीं। फिर सबको श्रीस्वामीजी महाराजने सोनेके लिये विदा किया। दूसरे दिन सवेरे सन्ध्या-वन्दनादि एवं भगवान्की आरतीके बाद सबको (फटे कपड़ेके लिये परस्पर गाली-गलौज करनेवाले लोगोंको) बुलाकर कपड़ेके फटे टुकड़े देते हुए कहा—'यह लो, अपने कपड़ोंके फाड़े हुए टुकड़े। तुम लोगोंने इतने-से कपड़ेके लिये आपसमें ऐसा दुर्व्यवहार किया जो एक साधारण मनुष्य भी सम्भवतः नहीं कर सकता, पर उस पहलवान

धनुर्दासको और उसकी भार्या हेमाम्बाको देखो, जिन्होंने उतने गहनेके लिये कैसा आचरण प्रकट किया। अब तुम ही इस बातका न्याय करो कि तुम्हारा आचरण श्रेष्ठ है या उन दम्पतिका! हम जो स्नानकर लौटनेके अवसरपर धनुर्दासको टेककर आते हैं, सो इसीलिये कि जातिमें ऊँचा न होनेपर भी उसका आचरण तुम-लोगोंसे अच्छा है। हम विश्वास करते हैं कि अब तुमलोगोंका संदेह दूर हो जायगा।' श्रीमद्रामानुजाचार्यजीकी बातोंसे पीछे मठके समस्त ईर्ष्यालु श्रीवैष्णवोंके जीमें धनुर्दासका महत्त्व बैठ गया और तबसे वे उसके साथ प्रेम और सहानुभूतिका बर्ताव करने लगे। श्रीस्वामीजीने उसी समय धनुर्दासको बुलाकर सब गहने यह कहते हुए दे दिये कि हमने तुम्हारी परीक्षाके लिये यह काण्ड रचा था। सो बुरा न मानना। धनुर्दासने उत्तरमें इतना ही कहा—'दासका सर्वस्व श्रीचरणका ही है। इसमें बुरा माननेकी कौन-सी बात है?' इस प्रकार धनुर्दास भगवत्कृपाकटाक्षसे अपनी विषय-लोलुपताके सदुपयोग और श्रीआचार्यस्वामीके कृपाकटाक्ष-पातसे क्या-से-क्या हो गया! वह अपने आदर्श आचरणोंसे श्रीवैष्णवसम्प्रदायके इतिहासमें अपना नाम अमर कर गया। आज भी वैष्णवलोग उसका नाम सम्मानके साथ लेते हैं। उसके साथ हेमाम्बा भी तर गयी।

भक्त पुरन्दरदास

पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दीमें विजयनगरके हिन्दू-साम्राज्यका वैभव दक्षिण भारतमें ही नहीं, अपितु सारे भरत-खण्डमें मध्याह्नकालीन सूर्यकी भाँति अपना प्रखर प्रकाश फैलाये हुए था। उस साम्राज्यके आश्रयमें साहित्य, संगीत, कला और भारतीय संस्कृतिने एक वार फिर अपना मस्तक उठाकर कीर्ति-मुकुट धारण किया और समस्त विश्वको अपना वैभव दिखलाया। साहित्यकी श्रीवृद्धिके लिये तो वह काल सर्वोत्तम माना जाता है। इसी स्वर्णयुगमें हिंदी-काव्य-साहित्यगगनके सूर्य सूरदास तथा शशि तुलसीदास-जैसे रससिद्ध कवीश्वर उत्पन्न हुए थे।

सोलहवीं शताब्दीमें विजयनगरके राजा कृष्णदेव राय हुए। वे बड़े ही साहित्यज्ञ और साहित्यप्रेमी थे। उनके दरबारमें तेलगू और कन्नडीभाषाके अनेकों कवियोंको आश्रय मिला था। उन्हींके दरबारमें अप्पय दीक्षित आदि आठ प्रसिद्ध कवि थे, जो 'अष्ट दिग्गज' के नामसे प्रख्यात थे। उसी सुराज्यमें कुमार व्यास (जिन्होंने महाभारतको कन्नडीभाषामें अनुवादित किया), कुमार वाल्मीकि (जिन्होंने तोरवेय रामायण लिखा) तथा कनकदास आदि कविश्रेष्ठ थे, जिनकी कृतियोंसे कन्नडी-साहित्य आजतक अपना सिर ऊँचा किये हुए है। कविवर पुरन्दरदासजी भी इसी युगकी एक महान् विभूति थे।

धर्म साहित्यका उपादान कारण है, बिना धर्मके साहित्यका निर्माण हो ही नहीं सकता। संसारके सभी देशोंने धर्मकी नींवपर ही साहित्यका समुन्नत प्रासाद खड़ा किया है। कन्नडी-साहित्यके आदिकालमें जैन-साहित्यकी बड़ी उन्नति हुई। 'रत्न' और 'पंप' की रचनाएँ तो विश्व-साहित्यसे होड़ लगा सकती हैं। इसके बाद शैव (लिंगायत) साहित्य बढ़ा। शैव-साहित्यके निर्माताओंमें श्रीवसवेश्वर, सर्वज्ञ महादेवी आदि मुख्य हैं। विजयनगरमें हिंदू-साम्राज्यकी स्थापना हो जानेके बाद आश्रय पाकर ब्राह्मण अथवा दास-साहित्यकी श्रीवृद्धि हुई। ब्राह्मणोंका द्वैत-साहित्य बहुत ही लोकप्रिय हुआ; क्योंकि वह सरल, सरस, सुबोध और जनताके हृदयोंमें घर करनेवाला था। उसके पहले स्मृति तथा दर्शनशास्त्र-की जटिल समस्याओंसे सर्वसाधारण जनताको संतोष नहीं होता था, बल्कि यों कहें कि धार्मिक कृत्योंके वितण्डावाद और आडम्बर-से सदाचारतकका लोप हो गया था। पारस्परिक विद्वेष, कलह आदिका बोलबाला था। साधारण जनता संस्कृतभाषाका ज्ञान न रखनेके कारण अज्ञानान्धकारमें पड़ी थी और जो लोग 'शास्त्रज्ञ' कहे जाते थे, वे अपने आचरणोंसे उनमें भ्रम फैला रहे थे। संन्यास-ग्रहण करनेवाले लोगोंमें भी अनेकों बुराइयाँ आ गयी थीं। निष्कपट व्यवहार, शुद्ध मनोभाव, भगवद्भक्ति आदि सद्गुण लुप्त हो गये थे। भोग-विलास और आमोद-प्रमोदमें ही प्रायः सब लोग मग्न थे।

ऐसी परिस्थितिमें लोकहितैषी साहित्यकी बड़ी आवश्यकता थी और इसी कारण पथभ्रान्त लोगोंको सन्मार्गपर लाने तथा

जनताके अज्ञानान्धकारको दूर करनेके लिये वैष्णव-साहित्यकी सृष्टि हुई। भगवान्‌ने उस समय भक्तराज पुरन्दरदासको प्रेरित किया और वैष्णव-साहित्यके निर्माताओंमें उनका स्थान अत्यधिक ऊँचा हुआ। उन्होंने कन्नडी-साहित्य तथा जनताकी जो सुन्दर सेवा की वह सर्वथा वर्णनातीत है। उन्होंने साहित्यमें भक्तिरसकी सर्वसुलभ अमृतधारा बहा दी, जिसका एक-एक घूँट पीकर असंख्य जन तर गये। संत पुरन्दरदासके द्वारा ही 'कर्नाटक संगीत'का भी उद्धार हुआ। कहा जाता है कि उनके कीर्तन-पदोंने ही तेलगू-के महान् भक्त कवि श्रीत्यागराजको उत्पन्न किया। दक्षिण भारत-में ऐसा शायद ही कोई होगा, जिसने श्रीपुरन्दरदास तथा श्रीत्याग-राजके कीर्तन न सुने हों। घर-घरमें इनकी कीर्ति मुक्तकण्ठसे सराही जाती है, इनके बनाये भजन गाये जाते हैं और कीर्तन होता रहता है।

भगवान्‌की लीलाका भी क्या कुछ ठिकाना है! वे स्वयं तथा अपने भक्तोंद्वारा कब-कब किस-किस रूपमें कौन-कौन-सी लीलाएँ करते-कराते हैं, इसका रहस्य उनके तथा उनके भक्तोंके सिवा और कोई नहीं जानता। कौन कह सकता है कि महात्मा श्रीपुर-न्दरदासजी अपने पूर्व-जीवनमें अपार धनराशिके स्वामी, किंतु परम कंजूस रहे होंगे! पर बात ऐसी ही है। पण्ढरपुरके पास ही पुरन्दरगढ़ नामका एक नगर है। वहाँ एक ब्राह्मण निवास करते थे, जिनका नाम था वरदप्प नायक। शाके १४०४ के लगभग उन्हें एक पुत्र हुआ, जिसका नाम श्रीनिवास नायक रक्खा गया। पुत्र-जन्मके कुछ साल बाद वरदप्प नायककी मृत्यु हो गयी और श्रीनिवास नायक अपने पिताके अपार धनके मालिक बने। उस

समय विजयनगर और गोलकुण्डा—ये दो बड़े समृद्धिशाली राज्य थे। वहांके राजाओंसे श्रीनिवास नायक हीरे, मोती, माणिक्य आदि बहुमूल्य रत्नोंका व्यापार करने लगे। उससे उनकी सम्पत्ति और भी बढ़ गयी। वे एक सुविशाल सम्पत्तिके स्वामी बन गये, परंतु यह दस्तूर-सा है कि ज्यों-ज्यों मनुष्यके पास धन बढ़ता है, त्यों-ही-त्यों उसकी उदारता घटती जाती है। इसी कहावतके अनुसार श्रीनिवास भी हद दर्जेके कंजूस हो गये। एक पैसा देनेके नामपर भी उन्हें बुखार चढ़ आता था। धनके अत्यधिक मोहने उनकी आँखोंपर परदा डाल दिया।

श्रीनिवास नायकके पूर्वकृत सुकृतके फलोदयका अवसर आया, उनके पहलेके लिये हुए भजनके प्रभावने प्रकट होना चाहा, भगवान्ने मायामें भूले हुए अपने भक्तकी मोहनिद्रा भङ्ग करनेके लिये एक बड़ी मनोहर लीला रची। वे एक दिन एक दरिद्र ब्राह्मणका वेष बनाकर श्रीनिवास नायककी दूकानपर आये। ब्राह्मणने श्रीनिवास नायकसे याचना की, कहा कि 'मेरे लड़केका यज्ञोपवीतसंस्कार होनेवाला है। मैं बहुत ही गरीब हूँ। आप करोड़-पति हैं। मेरी कुछ सहायता कीजिये।' श्रीनिवास नायक सीमापर पहुँचे हुए कंजूस थे, परंतु भरसक साधु-ब्राह्मणोंके सामने अविनय नहीं करते थे, इसलिये उन्होंने कहा—'आज फुरसत नहीं है, कल आइये।' ऐसा कहनेका उद्देश्य यह था कि कल ब्राह्मण फिर न आवें और इस तरह कुछ देना न पड़े। परंतु ब्राह्मण क्यों मानने लगा? वह दूसरे दिन आया। श्रीनिवास नायकने फिर कहा कि 'क्या करें फुरसत ही नहीं मिलती, अच्छा कल आइये।' इस

प्रकार तीसरे, चौथे, पाँचवें दिन करते-करते श्रीनिवास नायकने उस ब्राह्मणको छः महीनेतक टरकाया, परंतु ब्राह्मण भी ऐसा प्रणका पक्का निकला कि वह नित्य उसके वादेके मुताबिक आता ही रहा। अन्तमें उस ब्राह्मणके द्वारा श्रीनिवास नायकका नाकों दम हो गया। वे एक दिन झिझककर उठे और रद्दी पैसोंसे भरी हुई दो थैलियाँ लाकर उन्होंने ब्राह्मणके सामने पटक दीं और कहा कि 'इन थैलियोमेंसे जो एक पैसा पसंद आवे, उसे निकाल ले जाइये।'

ब्राह्मणवेषधारी भगवान् तो सब कुछ जानते ही थे, फिर भी उन्होंने ऐसा भाव प्रकट किया मानो वे दंग रह गये हों। अथवा जैसे छः महीनोंके बाद ही सही, उन्हें उस करोड़पतिसे मालामाल हो जानेकी आशा थी और उसपर पानी फिर गया हो। ब्राह्मणने दुखी होकर उन थैलियोंको खोला भी नहीं, वह वहाँसे सीधे चल पड़ा तथा श्रीनिवास नायकके घरपर उनकी स्त्री लक्ष्मीबाईके पास पहुँचा। उससे उसने सारी कथा सुनायी और कहा कि 'यदि तुम कुछ सहायता कर सकती हो तो करो।' लक्ष्मीबाई श्रीनिवास नायक-जैसे कंजूसराजकी स्त्री होनेपर भी बड़ी ही उदार थी। उसने पतिके कर्तव्योंकी ओर ध्यान नहीं दिया और पिताका दिया हुआ उसके पास जो बहुमूल्य नकफूल था, उसे उतारकर 'कृष्णार्पणमस्तु' कहते हुए उसने ब्राह्मणको दे दिया। परंतु वह विचित्र ब्राह्मण नकफूल लेने तो आया नहीं था, उसे तो श्रीनिवास नायककी जीवन-धाराको दूसरी दिशामें पलटना था। अतः वह नकफूल लेकर श्रीनिवास नायककी दूकानपर ही गया और बोला

कि 'इस नकफूलको गिरवीं रखकर मुझे चार सौ मुहरें दे दो।' श्रीनिवास नकफूल देखते ही पहचान गये। उन्होंने झटपट ब्राह्मण-से कहा—'ठीक है, आप इस नकफूलको मेरे पास ही रहने दीजिये। कल आइयेगा एक सौ मुहरें दूँगा।'

ब्राह्मण 'अच्छा' कहकर चला गया। श्रीनिवास नायकने बड़ी सावधानीसे नकफूलको दूकानकी तिजूरीमें बंद करके ताला लगा दिया और घर आकर स्त्रीसे पूछा कि 'तुम्हारा नकफूल कहाँ है ?' लक्ष्मीबाई क्या जवाब देती ? वह चुप रही। श्रीनिवास नायक आपेसे बाहर हो गये। एक तो वे स्वयं ही महान् कंजूस थे, दूसरे उस ब्राह्मणको, जिसने छः महीनोंतक उन्हें परेशान किया, बेशकीमती नकफूल दे देना, क्या साधारण बात थी! श्रीनिवास नायकने क्रुद्ध होकर स्त्रीसे कहा–'मैं पूछता हूँ, तुम्हारा वह नकफूल कहाँ है, जिसे तुम सबेरेतक पहने हुए थी ?' सती-साध्वी पतिपरायणा लक्ष्मीबाई काँपने लगी। उसको पतिके क्रोधी स्वभावका पता था। उसकी आँखोंके सामने अँधेरा छा गया। वह कुछ न बोली। श्रीनिवास नायक और भी गरज उठे, बोले—'बता कहाँ है तेरा नकफूल ? अभी लाकर दे, नहीं तो तुझे जीते ही जमीनमें गड़वा दूँगा।'

लक्ष्मीबाई उसी तरह अवाक् थी, जिस नकफूलको दान दे चुकी थी, उसे कहाँसे लाकर देती ? यदि पतिसे कहती कि मैंने उसे दान दे दिया, तो इसपर उनका क्रोध और भी बढ़ जाता। आखिर उसके मुँहसे निकल गया—'नाथ! नकफूल अंदर रखा हुआ है ?' यह कहकर वह भीतर गयी और झटपट आत्महत्या करनेका प्रयत्न करने लगी। हीरेकी अँगूठी उसकी अंगुलीमें थी,

उसने उसको निकाला और पत्थरपर घिसकर विष तैयार किया। विषकी कटोरी हाथमें लेकर अनन्यभक्तिके साथ दयामय भगवान्‌की प्रार्थना की, कहा—'भगवन्! मैंने तुम्हारे ही प्रीत्यर्थं उस नकफूलका दान किया था। मेरा विश्वास है कि भिक्षुक ब्राह्मणके वेषमें तुम्हीं आये थे। तुमने द्रौपदीकी लाज बचायी थी। ध्रुव, प्रह्लाद, अजामिल आदिको उबारा था, मेरी भी रक्षा करोगे ही। पर मैं मौतसे बचना नहीं चाहती। मुझे अपने चरणोंमें ले लो और मेरे पतिदेवकी बुद्धिको इतना निर्मल बना दो कि वे तुम्हारा स्मरण करते हुए साधु-ब्राह्मणों और दीन-दुखियोंकी मुक्तहस्तसे सेवा करें और उससे कभी न अघायें।' यह कहकर लक्ष्मीबाईने ज्यों ही उस विषकी कटोरीको होठोंसे लगाना चाहा, त्यों ही उसमें कोई चीज खन्-से आ गिरी! लक्ष्मीबाई चौंक पड़ी। आँख खोलकर देखा तो कटोरीमें उसका वही नकफूल पड़ा हुआ है। उसने चारों तरफ आँख फाड़-फाड़कर देखा, पर उस बंद कमरेमें कोई नहीं था। अब उसकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। वह फूले अङ्ग न समायी। भक्तवत्सल भगवान्‌की लीला उसकी समझमें आ गयी। उसने गद्‌गदकण्ठसे भगवान्‌की फिर स्तुति की। तदनन्तर उस नकफूलको लेकर प्रसन्नतापूर्वक पतिदेवके पास गयी।

श्रीनिवास नायकने नकफूल तो रख ही लिया था—स्त्रीको डाँट-फटकार सुनानेके बाद अब वे यह सोच रहे थे कि कल जब वह ब्राह्मण सौ मुहरें लेनेके लिये आवेगा, तब क्या होगा? इतनेमें सामने खड़ी हुई अपनी स्त्रीके हाथमें उन्होंने वह नकफूल देखा,

वे दंग रह गये। इसी नकफूलको ब्राह्मणके हाथोंसे लेकर उन्होंने तिजूरीमें बंद किया था, उसकी चाभी उन्हींके पास थी। फिर भी उन्हें विश्वास नहीं हुआ, स्त्रीके हाथसे नकफूल लेकर वे अपनी दूकानकी ओर दौड़ पड़े। वहाँ जाकर देखा तो तिजूरी ज्यों-की-त्यों बंद है, पर उसमेंसे नकफूल गायब है। श्रीनिवास नायकका दिमाग अब चक्कर काटने लगा, उनका सुदृढ़ मन विचलित हो उठा। वे सोचने लगे, यह क्या लीला है, वह ब्राह्मण कौन है, नकफूल इस पेटीमेंसे अदृश्य होकर लक्ष्मीबाईके हाथमें कैसे गया? आदि-आदि। थोड़ी देर बाद श्रीनिवास नायक घर लौटे, इधर लक्ष्मीबाईको भी आजकी घटनासे बड़ा आश्चर्य हुआ था। वह बड़े आनन्दके साथ भगवान्की इस अद्भुत लीलाका चिन्तन करती हुई भगवत्प्रेममें तन्मय हो रही थी। इतनेमें गम्भीर आकृति बनाये श्रीनिवास नायक उसके पास आये। आज उनमें एक विचित्र परिवर्तन हो गया था। संसारकी विनश्वरता उनकी आँखोंके सामने नाचने लगी थी। वे आजकी घटनाके साथ-साथ यह सोच रहे थे—'मेरा भी जीवन, क्या कोई जीवन है। मैं कितना अधम हूँ, जो आजतक मैंने भगवान्का एक बार भी ध्यान नहीं किया, किसीको एक कानी कौड़ी भी दानमें नहीं दी।' उन्होंने अपनी स्त्रीसे पूछा—'लक्ष्मी! कहो, सच्ची बात क्या है? तुमने नकफूल किसको दिया था? वे ब्राह्मण कौन थे? फिर तुम्हें यह नकफूल कैसे मिला? प्रिये! बोलो, जल्दी बोलो! मैं इन सारी आश्चर्यजनक बातोंको जाननेके लिये उत्सुक हो रहा हूँ।'

पतिकी कातर वाणी सुनकर लक्ष्मीबाईको रोमाञ्च हो आया। उसने बड़े विनय और शान्तिके साथ सारी घटना कह सुनायी। किस प्रकार करुण शब्दोंमें उन ब्राह्मण देवताने उससे सहायताकी याचना की, किस प्रकार पतिके कोपसे बचनेके लिये उसने विषपान करना चाहा, फिर कैसे उसकी विषभरी कटोरीमें वह नकफूल आ गिरा, इन सारी बातोंको लक्ष्मीबाईने एक-एक करके पतिके समक्ष निवेदित कर दिया। अब क्या था, स्त्रीकी बातोंको सुनते ही श्रीनिवास नायककी मनोवृत्ति पूर्णतः परिवर्तित हो गयी। उन्होंने दोनों हाथोंको जोड़कर और उन्हें मस्तकसे लगाकर कहा—'धन्य हो प्रभो! तुमने ब्राह्मणरूपमें मेरे-जैसे अधम कंजूससे याचना की, किंतु मैंने लोभवश तुम्हारी कुछ भी सेवा नहीं की। नाशवान् धनके प्रलोभनमें पड़कर मैं तुमको भूल बैठा! मेरी स्त्रीने तुम्हें कुछ देना चाहा भी तो उसपर मैं आपेसे बाहर हो गया। फिर भी तुमने मेरी इस नीचतापर कोई विचार नहीं किया, बल्कि मेरी प्राणप्रिया पत्नीके प्राणोंकी रक्षा की और मुझे नरककी ओर जानेसे बचाया।' श्रीनिवास नायक यह कहते-कहते जडवत् हो गये। उनकी आँखोंसे अश्रुधारा बहने लगी। वे एकटक होकर अपनी स्त्रीकी ओर ताकने लगे। लक्ष्मी-बाईने भगवान्की अनेकों सुललित लीलाओंका बखान करके पतिको सचेत किया। वे वहाँसे उठकर स्नानागारकी ओर गये। स्नानके पश्चात् श्रीनिवास नायकने स्त्रीके साथ अनन्य भक्तिभाव-पूर्वक भगवान्की पूजा की, अपराधोंकी क्षमाके लिये सजल नेत्रोंसे स्तुतियाँ कीं और उसी समय तुलसीदल तथा जल हाथमें

लेकर 'कृष्णार्पणमस्तु' का उच्चारण करते हुए अपनी सारी सम्पत्ति दान करनेका सङ्कल्प कर लिया।

श्रीनिवास नायकने दीनों, कंगालों और ब्राह्मणोंको बुलाकर अपना सारा धन लुटा दिया। वे कंजूसीरूपी पापका पूरा प्रायश्चित्त करके फकीर हो गये। अपने तथा स्त्री-पुत्रोंके लिये एक कौड़ी भी नहीं बचायी और वे परिवारके साथ घरसे निकल पड़े। लक्ष्मीबाईने केवल सोनेकी बनी हुई अपनी सिन्दूरकी डिबियाको आँचलमें बाँध रक्खा था; परंतु श्रीनिवास नायकने देखा तो मार्गमें उसे भी फेंकवा दिया। लोगोंने उन्हें बहुत समझाया, पर उन्होंने एक बात भी न सुनी। वे सच्चे अपरिग्रही बनकर पण्ढरपुर पहुँचे। वहाँ इन्हें गरीबीके कारण बड़े-बड़े कष्ट उठाने पड़े; पर वे जरा भी विचलित नहीं हुए। प्रातःकाल विट्ठल स्वामीके कीर्तन गा-गाकर वे द्वार-द्वार घूमते; जो कुछ भी मिल जाता, उसीसे तृप्त होकर बाकी सब समय श्रीविट्ठल स्वामीके भजन-पूजनमें मस्त रहते। इस प्रकार श्रीनिवास नायक बारह वर्षोंतक पण्ढरपुरमें रहे और तत्पश्चात् वहाँ मुसल्मानोंका उपद्रव होनेके कारण विजयनगर चले गये।

विजयनगरके राजा श्रीकृष्णदेव राय रत्नोंका व्यापार करनेके कारण श्रीनिवास नायकसे पहलेसे ही परिचित थे। जब उन्होंने श्रीनिवास नायकको उस रूपमें देखा तो उनके आश्चर्यकी सीमा न रही। राजाके गुरुका नाम स्वामी श्रीव्यासराय था। वे संस्कृतके बड़े ही विद्वान्, यतिश्रेष्ठ और अनेकों धर्मग्रन्थोंके रचयिता थे। उनके अनेकों शिष्य थे। श्रीनिवास नायकने विजयनगरमें आकर

उन्हींकी शरण ली। उनको अपना गुरु बनाया। स्वामीजीने अपने उन अधिकारी और सुयोग्य शिष्यको वेद, पुराण, श्रुति, स्मृति आदिका अध्ययन कराया और उनका दूसरा नाम 'पुरन्दर विट्ठल' रखकर आज्ञा दी कि अपने ज्ञान, बुद्धि, बल तथा अनुभवसे जनताजनार्दनकी सेवा करते हुए जगत्पिताकी महिमा गाओ। पुरन्दर विट्ठलने गुरुके चरणोंका शिरसा स्पर्श करते हुए उनकी आज्ञा शिरोधार्य की और वे ही आगे चलकर 'पुरन्दरदास' के नामसे सुविख्यात हुए।

'दास' का अर्थ है सेवक। वास्तवमें इस विश्वमें ईश्वरत्व और दासत्व–ये दो ही भाव हैं। भगवान् जगदीश्वर हैं और बाकी सब दास हैं। यह कहना चाहिये कि इस विश्व-ब्रह्माण्डके सभी प्राणी भगवान्के दास ही हैं। जो उन भगवान्को अपना प्रभु और अपनेको उनका दास मानकर उनकी महिमा गाते हुए उनके आज्ञानुसार अपना जीवन व्यतीत करता है, वही श्रेष्ठ है, उसका जीवन सार्थक है। शास्त्रोंकी यही आज्ञा है। अनुभवी संत-महात्माओंका यही उपदेश है। अस्तु, पुरन्दरदासजी ऐसे ही हरिदासोंमें हुए। उनकी महिमा स्वयं उनके गुरुदेव श्रीव्यास स्वामीने मुक्तकण्ठसे गायी है। महात्मा पुरन्दरदासने भगवान्का सच्चा दासत्व ग्रहण किया था और लोकहितके लिये अनेकों अलौकिक लीलाएँ दिखायी थीं। उनका त्याग अनोखा था, सारी सम्पत्ति दान कर देनेके बाद उनका सारा जीवन भिक्षापर ही बीता। और उनकी धर्मपत्नी सतीश्रेष्ठ लक्ष्मीबाईकी निष्ठाका क्या कहना! पतिके द्वारा उसे जो कुछ भिक्षान्न मिल जाता,

उसे ही वह बड़े प्रेमके साथ पकाती। सबसे पहले अतिथि-अभ्यागतोंको खिलाती, तत्पश्चात् पति-पुत्रोंको भोजन कराती और उसके बाद आप खाती। जो कुछ बच रहता, उसे तुंगभद्रा नदीके चक्रतीर्थमें डाल देती ताकि उसे जलचर खा जावें। पतिने उसे आज्ञा दे दी थी कि दूसरे दिनके लिये वह कुछ न बचावे। इस आज्ञाका वह दृढ़ नियमके साथ पालन करती। धन्य हो पुरन्दरदास और लक्ष्मीबाई! आज व्यंगमें लोग दरिद्रोंके घरको 'पुरन्दरदासका घर' कहते हैं, पर इस व्यंगमें तुम्हारी कितनी महिमा भरी पड़ी है।

महात्मा पुरन्दरदास भगवान्की प्रेरणा तथा गुरुकी आज्ञासे कविता करने लगे। उनके अंदर जो कवित्वशक्ति प्रसुप्त थी, वह जाग उठी। परंतु जहाँ उन्हें भगवद्भक्ति, तत्त्वज्ञान और वैराग्यपूर्ण पदोंको रचकर तथा उनका गायन करके जगत्का कल्याण करना था वहीं एक और भी महत्त्वपूर्ण कार्य करना था। समाजमें फैले हुए वाह्याडम्बर, जातिद्वेष, कुरीतियों आदिका भी खण्डन करना था। इसलिये उन्होंने जनताके हृदय-क्षेत्रमें भक्तिका बीज वोनेके साथ-ही-साथ जहाँ कहीं बुराइयोंको देखा, वहीं उनका खुल्लमखुल्ला विरोध किया। जो लोग जनताके अज्ञानसे लाभ उठाकर भक्ति, ज्ञान, वैराग्यके नामपर लोगोंको ठगते फिरते थे, उन्हें पुरन्दरदास-जीने खूब फटकारा और बुरी प्रथाओंको तोड़नेके लिये जन-समाज-को प्रोत्साहित किया तथा अच्छी बातोंको दूसरोंसे भी ग्रहण करनेका उपदेश दिया। पुरन्दरदासजीकी ऐसी कोई भी कृति नहीं जो बिना

किसी उद्देश्यविशेषके लिखी गयी हो। किसीके द्वारा पापाचारका विरोध किया गया है तो किसीके द्वारा सन्मार्गपर चलनेका आदेश दिया गया है। इस प्रकार समाजका उद्धार करनेके लिये पुरन्दरदासजीने खण्डन और मण्डन दोनों क्रियाओंका उपयोग किया तथा इसमें उन्हें पूरी सफलता मिली। पुरन्दरदासजीकी स्पष्टवादिताके अनेकों उदाहरण हैं। एक बार विजयनगरके राजा कृष्णदेव रायके पूछनेपर उन्होंने कहा—'राजन्! मैंने अपनी सारी भौतिक सम्पत्ति लुटा दी तभी तो ईश्वररूपी अमूल्य वैभव मुझे प्राप्त हुआ है। आप राजा हैं और आपके पास वहुत-सा धन है, पर आप ही वताइये कि आपकी सम्पत्ति वड़ी है या मेरी ? वास्तवमें श्रीपुरन्दरदासजीको वाह्य रंकताके रूपमें जो अचल अविनश्वर सम्पत्ति मिली थी, उसकी तुलना क्या किसी भौतिक सम्पत्तिसे की जा सकती है ? भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं कहा है कि 'यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः।' अर्थात् 'जिसपर मैं अनुग्रह करता हूँ, उसका धन हर लेता हूँ।'

कई लोगोंका मत है कि कन्नडी-भाषामें दास-साहित्यके आदि निर्माता पुरन्दरदासजी ही हैं। पर यह मत ठीक नहीं जँचता। दास-साहित्यका उदय पुरन्दरदासजीके पहले ही हो चुका था। नवीं शताब्दीमें ही श्रीअचलानन्ददासने दास-साहित्यकी सृष्टि की थी। उसके वाद श्रीमाधवाचार्यजीके शिष्य नरहरितीर्थने और तदनन्तर १५-१६वीं शताब्दीमें श्रीपादराय तथा श्रीव्यासराय आदिने दास-साहित्यकी श्रीवृद्धि की। परंतु इतना तो मानना ही पड़ेगा और यह कहा भी जा चुका है कि श्रीपुरन्दरदासजीने दास-

साहित्यको अत्यधिक समुन्नत बनाया। दास-साहित्यके उद्धारकों-में उनका स्थान अत्यन्त ऊँचा है। उन्होंने ही दास-साहित्यके क्रमागत निर्माताओंकी संस्था 'हरिदासपन्थ' अथवा 'दास-कूट' की स्थापना की। श्रीपुरन्दरदासजीके चार पुत्र इस संस्थाकी उन्नतिमें और भी सहायक हुए। 'दास-कूट' अब भी है और उसके अनेकों अनुयायी हैं, जो समय-समयपर एकत्रित होकर दास-साहित्यके कीर्तन गाते हैं। दास-कूटके कारण ही अबतक दास-साहित्यको कोई क्षति नहीं पहुँची है।

देश तथा धर्मकी उन्नतिमें साहित्यसे बड़ी सहायता मिलती है। साहित्य देशके लिये उपयोगी है, जिस साहित्यके द्वारा धर्मकी अभिवृद्धि होती है—जनताको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंके सम्पादनमें सहायता मिलती है, वस्तुतः वही साहित्य है। श्रीपुरन्दरदासजीकी साहित्य-रचनाका यही उद्देश्य था, अतः उन्होंने संस्कृतके धर्मग्रन्थोंसे जो सहायता मिल सकती थी, उसे अपनाया। वेद, उपनिषद्, भगवद्गीता, ब्रह्मसूत्र आदि धर्मग्रन्थोंके सारको ग्रहण करके उसे सरल सरस कन्नडी-भाषामें प्रकट किया। इनके अनेकों उदाहरण दिये जा सकते हैं, पर यहाँ स्थानाभाववश एक ही उदाहरण दिया जा रहा है। श्रुतियोंने सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको परिपूर्ण बताया है, उसीको पुरन्दरदासजी-ने इस प्रकार प्रकट किया है—

पद नख परिपूर्ण जानु जंघे परिपूर्ण।
उरु कटि परिपूर्ण नाभि कुक्षि परिपूर्ण॥
शिरो बाहु परिपूर्ण शिरोरुह परिपूर्ण।
सर्वांश परिपूर्ण पुरन्दर विट्ठला॥

इसीलिये श्रीपुरन्दरदासजीकी कृतियोंको उनके गुरुदेव श्रीव्यासराय स्वामीने 'पुरन्दरोपनिषद्' नाम देकर सम्मानित किया था।

श्रीपुरन्दरदासजीने भगवन्नाम-स्मरणपर बड़ा जोर दिया, इसीलिये कई लोग उन्हें देवर्षि नारदका अवतार कहते हैं। वास्तवमें श्रीपुरन्दरदासजीके द्वारा भगवन्नामका बड़ा प्रचार हुआ और अगणित नर-नारी उसका सहारा लेकर संसार-सागरके पार हो गये। पुरन्दरदासजी जो कुछ देखते थे, उसीको तात्त्विक रूप देकर उसे आत्माभिवृद्धिका साधन बना लेते थे। उन्होंने किसी-को हुक्का पीते हुए देखा तो कहा कि 'भक्तिरूपी हुक्का पीओ और काम-क्रोधरूपी धुआँ बाहर फेंक दो।' किसीके दरवाजेपर भिक्षा माँगने गये और गृहिणीने उन्हें देखकर दरवाजा बंद कर लिया, तब कहा कि 'उस स्त्रीने दरवाजा बंद कर लिया, इसलिये कि अंदर जो पाप है, वह बाहर न जाने पावे' इस प्रकार ऐसे अवसरोंपर कही गयी उनकी अनेकों सुन्दर उक्तियाँ हैं। स्पष्ट-वादी होते हुए भी पुरन्दरदासजी किसीके विरोधी नहीं थे। सबपर उनका प्रभाव था, किन्हीं दो व्यक्तियों, जातियों अथवा सम्प्र-दायोंमें झगड़ा हो जाता था तो वे बड़ी कुशलताके साथ उसका निपटारा करके उनमें मेल करा देते थे। अस्पृश्योंके साथ श्रीपुर-न्दरदासजीकी बड़ी सहानुभूति थी। उन्होंने अस्पृश्यताके सम्बन्ध-में जो बातें कही हैं, वे अत्यन्त प्रशंसनीय हैं। उन्होंने कहा है—

'क्या दूसरोंकी सम्पत्ति और स्त्री अस्पृश्य नहीं हैं ? क्या परमेश्वर-की विस्मृति अस्पृश्य नहीं है ? इनका स्पर्श न करो ।'

कहा जाता है कि पुरन्दरदासजीने कुल ४,७५,००० श्लोक रचे थे; परंतु इनमेंसे कई हजार नहीं मिलते ।

इस प्रकार श्रीपुरन्दरदासजीने अपने ऐहिक सुखोंका परित्याग कर त्यागमें सुखानुभव करते हुए भक्ति, ज्ञान, वैराग्यकी अतुल सम्पत्ति प्राप्त की थी और उसके द्वारा उन्होंने समाज तथा साहित्य-की बड़ी भारी सेवा की । वे एक युगान्तरकारी संत थे । उनकी सेवाओंके लिये समाज चिर-ऋणी रहेगा और वे सदा-सर्वदा हमारे लिये प्रातःस्मरणीय रहेंगे । लगभग चालीस वर्षोंतक तीर्थाटनके बहाने घूम-घूमकर उन्होंने लोक-कल्याण किया और जब लीला-संवरणका अवसर देखा तब ८० वर्षकी अवस्था पूरी हो जानेपर सं० १५६२ में भगवद्धामकी यात्रा कर दी !

बोलो भक्त और उनके भगवान्की जय !

भक्त गणेशनाथ

छत्रपति शिवाजी महाराजके समयकी बात है। बालाघाट जिलेमें सरसी और उज्जैनी नामक शहरोंके पास एक छोटा-सा गाँव था। वहीं भक्त श्रीगणेशनाथका जन्म हुआ। बचपनसे ही गणेशनाथका भगवत्सम्बन्धी विषयोंमें अपार अनुराग था। इनके माता-पिता परम वैष्णव थे और इसीसे बच्चेकी शिक्षा-दीक्षा भी ऐसी ही हुई कि सयाना होनेपर हरिके चरणोंमें स्वाभाविक सहज प्रीति हो। स्तन-पान कराते समय ही माँ कृष्ण, गोविन्द, नारायण, वासुदेव, दामोदर कह-कह बच्चेकी चुम्मियाँ लिया करती, मानो दूधके साथ ही वह अपने बच्चेको श्रीकृष्णप्रेमका अमृत पिला रही है। माताके दूधके साथ ही जिन्हें हरिरस पीनेका सौभाग्य प्राप्त है वे वास्तवमें बड़भागी हैं; क्योंकि उस समयका पिया हुआ प्रेम रोम-रोममें ओत-प्रोत हो जाता है और समस्त जीवनको प्रभुमय कर देता हैं; अन्यथा भगवान्में विश्वास होना बड़ी ही दुर्लभ बात है। यह तो पूर्वजन्मके किसी महान् पुण्यका फल ही मानना चाहिये—

महाप्रसादे गोविन्दे नाम्नि ब्रह्मणि वैष्णवे।
स्वल्पपुण्यवतां राजन् विश्वासो नैव जायते॥

श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्‌से कह रहे हैं—'भगवान्‌के महाप्रसादमें, भगवान्‌में, भगवन्नाममें, ब्रह्म अथवा ब्रह्मवेत्ता या वेदोंमें और वैष्णव पुरुषोंमें थोड़े पुण्यवालोंका विश्वास नहीं होता।'

गणेशनाथ जब थोड़े सयाने हुए तो माँ उनके पैरोंमें पैजनी पहना देती, हाथोंमें घुँघुरूदार पहुँची बाँध देती और बालोंमें मोरकी पंख खोंस देती और बड़े ही प्रेमसे करताल बजाकर गाती जाती—

राम राघव! राम राघव! राम राघव! रक्ष माम्।
कृष्ण केशव! कृष्ण केशव! कृष्ण केशव! पाहि माम्॥

माँ गाती जाती और गणेशनाथ नाचते जाते। बीच-बीचमें स्वयं भी 'लाम लाघव', 'लाम लाघव' बोलते जाते और किलकारियाँ देते जाते। यह प्रायः नित्यकी बात थी। इसने गणेशनाथके संस्कारगत भगवद्भक्तिको अत्यन्त दृढ़ कर दिया। बचपनसे ही गणेशनाथका हृदय हरिनामका रसिक हो गया।

जिसपर परमात्मा दया करता है उसे सर्वतोभावेन अपनी ओर आकृष्ट कर लेनेके लिये उसके सांसारिक समग्र बन्धन छिन्न-भिन्न कर देता है। गणेशनाथ कठिनाईसे बोलने-समझने योग्य हुए थे कि उनके माता-पिताका देहान्त हो गया। परंतु जिसे परमात्माके चरणोंमें कुछ भी विश्वास हो गया उसे संसारकी कोई भी विपदा डिगा नहीं सकती। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।
(गीता ६।२२)

गणेशनाथ क्यों घबड़ाते ? जिसके मस्तकपर प्रभुका हाथ है उसे किस बातकी चिन्ता ? जो दुःख देता है, वही दुःखमें सँभालता भी है। वास्तवमें इसे 'दुःख' कहना संसारी मनुष्योंकी मूढ़ता ही है। विषयोंके अभाव तथा विषय-सेवन करनेकी शक्तिके अभावको ही हम मूढजन दुःख कहते हैं। यह भूल नहीं तो क्या है ? हमें तो यह समझना चाहिये कि यह प्रभुका संकेत है, वह अपनी ओर हमें आकृष्ट करनेके लिये यह निमन्त्रण भेज रहा है। हमें इस दिव्य निमन्त्रणको स्वीकारकर सर्वभावेन प्रभुकी शरणमें जाना चाहिये; क्योंकि शाश्वत शान्ति एकमात्र हरिकी गोदमें ही है। अस्तु,

गणेशनाथको भगवन्नामका रस मिल ही चुका था। वे इस आपदाको प्रभुका प्रसाद मानकर पहलेसे भी अधिक प्रेमसे हरिनाम लेते और मस्त रहते। आस-पास साधु-महात्माओंके जो थोड़े-से आश्रम थे वहाँ जाकर गणेशनाथ भगवन्नाम-कीर्तन किया करते। सत्सङ्गमें उनका जी ऐसा रमता कि वे फिर इसे छोड़ अन्यत्र कहीं जाना पसंद ही नहीं करते। रात-दिन हरिनामरसमें छके रहते।

जिस सत्सङ्गकी महिमा शास्त्रों और मुनियोंने गायी है और गाते-गाते अघाये नहीं वह कितना दुर्लभ है। भगवत्कृपासे संसारकी नाना योनियोंमें भरमनेवाले पुरुषके बन्धनका जब नाश होनेका समय आता है तब ही उसे सत्सङ्ग प्राप्त होता है। और जब साधु-समागम होता है तभी साधुओंके शरण्य, कार्य-कारणोंके नियन्ता परमेश्वरमें मति स्थिर होती है। श्रीमद्भागवतका श्लोक है—

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवे-
जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः।

सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ
परावरेशे त्वयि जायते मतिः ॥
(१० । ५१ । ५४)

सत्सङ्ग पाकर भगवद्भक्ति खिल उठती है। साधुओंका समागम पाकर गणेशनाथकी भक्ति उमड़ आयी। वे रात-दिन भगवन्नाम-जप करते और विलज्ज होकर भगवान्का नाम जोर-जोरसे लेकर नाचते, गाते, हँसते, रोते! उन्होंने काठके कुण्डल धारण कर लिये और एक ही लँगोटी पहनकर रहने लगे। कड़ाकेका जाड़ा, गर्मी या वर्षामें भी वे बस, एक लँगोटी ही पहने रहते और सदैव प्रेमभरी वाणीसे हरिनामसङ्कीर्तन किया करते। वे भगवान्की मूर्तिके सामने प्रेमविभोर होकर नाचा करते और करुणाभरे शब्दोंमें अपने देवताके चरणोंमें प्रार्थना करते—

संसारकूपे पतितो ह्यगाधे
मोहान्धपूर्णे विषयातिसक्तः।
करावलम्बं मम देहि नाथ
गोविन्द दामोदर माधवेति ॥

'इस संसाररूपी अगाध समुद्रमें डूबते विषयासक्त मुझ अधम-को अपने हाथोंका सहारा देकर, हे नाथ! आप उबार लीजिये। हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव! मैं आपकी शरण हूँ।'

अब गणेशनाथके लिये बस एक ही काम रह गया—और वह था प्रेमपूर्वक भगवन्नामकीर्तन। दिनको वे पासके जंगलमें

चले जाया करते और वहाँ एकान्तमें खूब जोर-जोरसे कीर्तन करते। संध्या समय गाँवकी ओर लौटते और हरि-कथा सुनाते। भगवान्‌की लीलामें जिसे रस आने लगता है उसे संसारके अन्य सभी रस फीके लगते हैं। भगवान्‌की लीलाओंमें जो आनन्द है वह संसारमें कहाँ मिले? गजेन्द्र-मोक्ष और द्रौपदी-चीर-हरणकी कथा सुनाते समय गणेशनाथ सारी सुध-बुध खोकर गद्‌गद कण्ठ-से आर्तभावसे रो पड़ते—

गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय।
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव॥
हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन।
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन॥
(महा० सभा० ६७)

बीच-बीचमें विशेष भावाविष्ट होकर वे नाचने लगते और सारी जनता प्रेम-विह्वल होकर उनके स्वरमें स्वर मिलाकर गाने लगती। नामसङ्कीर्तनका रस बड़ा ही अनोखा है। जिसे एक बार इसका मजा आया फिर वह जन्म-जन्मान्तरके लिये नामका दास हो गया। श्रीमद्भागवतमें ऐसे नामप्रेमी भक्तोंका बड़ा ही सुन्दर वर्णन मिलता है। नामसङ्कीर्तन करनेके कारण जिसका प्रभुके पादपद्मोंमें दृढ़ अनुराग उत्पन्न हो गया है, जिसका चित्त प्रेमसे द्रवीभूत हो गया है, ऐसा भक्त पागलकी भाँति कभी तो जोरसे खिलखिलाकर हँसता है, कभी दहाड़ मारकर रोता है, कभी रोते-रोते हू-हू कर चिल्लाने लगता है, कभी गाने लगता है और कभी संसारकी कुछ भी परवा न करते हुए आनन्दके उद्वेग-

में नृत्य करने लगता है। कभी जोरोंसे चीत्कार करने लगता है, कभी भगवान्‌की मञ्जुल मूर्तिका ध्यान करने लगता है, कभी लोगोंके चरण पकड़-पकड़कर उनकी वन्दना करता है, फिर बार-बार लंबी साँसें छोड़ने लगता है और लोक-लज्जाकी कुछ भी परवा न करता हुआ जोरोंसे हे हरि! हे जगत्पते! हे नारायण! इस प्रकार उच्चारण करने लगता है।

संसारके कोई भी नियम तन-मनकी सुधि बिसरे हुए ऐसे प्रेमी भक्तपर लागू नहीं होते। वह श्रेष्ठ भक्त तो रथाङ्गपाणि भगवान्‌के चक्रपाणि, गोपीजनवल्लभ, राधारमण आदि सुन्दर सुमनोहर नामोंका तथा उनके अर्थोंका गान और उनकी अलौकिक दिव्य लीलाओंका सङ्कीर्तन करता हुआ निर्लज्ज और निरीह होकर निःसङ्गभावसे पृथ्वीपर विचरण करता है।

श्रीमद्भागवतमें कहा है—

> शृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्गपाणे-
> र्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके।
> गीतानि नामानि तदर्थकानि
> गायन् विलज्जो विचरेदसङ्गः॥
> (११।२।३९)

साधनाके पथमें सबसे विकट विघ्न है मान-प्रतिष्ठा! बड़े ऊँचे-से-ऊँचे महात्मा अपनी साधनाको मान-प्रतिष्ठा, पूजा-बड़ाईकी बलिवेदीपर चढ़ा देते हैं। मान-बड़ाई मीठी छूरी है, विषरसभरा कनकघट है। जहाँ एक बार भी मान-बड़ाईकी बात सुनकर

साधकका हृदय पिघला, जहाँ अपनी प्रतिष्ठामें रस मिलने लगा, वहीं साधकका पतन हो गया ! इसीलिये साधनाके पथमें पग-पगपर सावधानीकी आवश्यकता है। सावधानी ही साधना है। साधकको बराबर देखते रहना चाहिये कि कहीं उसके हृदयमें-कहीं किसी कोनेमें लुक-छिपकर काम तो नहीं बसा हुआ है ? उसे बराबर अपने ऊपर चौकसी रखनी चाहिये और भगवान्का आश्रय रखते हुए सदा दुर्गुणोंसे बचते रहना चाहिये। यदि भगवान्का दृढ़ आश्रय बना रहा तो विपदाएँ और विषमताएँ कुछ नहीं कर सकतीं। एक बातका सदा ध्यान रक्खा जाय--कहीं संसारका कोई भी प्रलोभन हृदयको लुभा न ले। अस्तु,

गणेशनाथने संसारसे दृढ़ वैराग्य धारण कर लिया और सुख-दुःख, मान-अपमान, राग-द्वेष आदि द्वन्द्वोंसे परे हो गये। उन्हें काञ्चन-कामिनीके प्रति इतनी उदासीनता हुई कि वे इनकी ओर देखतेतक नहीं थे। सुन्दर वस्त्र, सुस्वादु भोजन और धन-सम्पत्तिकी ओरसे तो उन्होंने आँखें ही फेर लीं।

एक बार छत्रपति शिवाजी तीर्थयात्राके लिये पण्ढरपुर गये। साधु गणेशनाथका नाम सब लोग जानते ही थे। शिवाजी महाराज गणेशनाथके दर्शन करनेके लिये गणेशनाथके चरणोंमें पधारे। उस समय गणेशनाथजी कीर्तनमें संलग्न थे। उन्हें क्या पता था कि कौन आया और कौन गया ! सारी सुध-बुध खोकर गणेशनाथ पैरोंमें घुँघुरू बाँधकर नाचते रहे और भगवन्नामकीर्तन करते रहे। रात बहुत बीत गयी। कीर्तन समाप्त हुआ। शिवाजीने

गणेशनाथजीके चरणोंमें अपना मुकुट रखकर और हाथ जोड़कर बड़े ही आदर-विनयके साथ कहा—'महाराज! आज कृपाकर मेरे खीमेमें पधारिये और वहीं रातको विश्राम कीजिये।' इस मान-प्रतिष्ठाको देखकर गणेशनाथका हृदय रो उठा; परंतु शिवाजीका आग्रह भी अटल था। जब गणेशनाथजीने देखा कि गये बिना काम न चलेगा तो उन्होंने एक तदबीर सोची। उन्होंने बहुत-से कंकड़ चुन लिये और उन्हें अपने वस्त्रके छोरमें बाँध लिया। शिवाजीको यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ और जब उन्होंने इसका कारण पूछा तो भक्त गणेशनाथने कहा—'भगवान्‌का नाम लेनेके लिये।'

मान-प्रतिष्ठाकी लपटें जब घेरने लगें तो भगवान्‌के नामका आश्रय लेना चाहिये और जोर-जोरसे भगवन्नामका जप करने लगना चाहिये। संसारके प्रलोभनोंसे परमात्मा ही बचा सकता है और उसका हाथ तो सर्वत्र, सर्वदा भक्तके मस्तकपर है ही। गणेशनाथजी जब शिवाजीके खीमेमें पहुँचे तो देखते क्या हैं कि फूलोंकी सेज बिछी हुई है, इत्र-पान रखा हुआ है और भिन्न-भिन्न प्रकारके पकवान-मिठाई परोसी हुई रखी है। गणेशनाथका हृदय सन्न हो गया! वे सोचने लगे—हाय! मैं इनके बीचमें क्यों फँसा! जिस प्रकार कोई शेर गायके एक छोटे बछड़ेको पकड़कर अपनी माँदमें ले जाता है और बछड़ा भयभरी दृष्टिसे शेरको बार-बार देखता है और भाग जानेके लिये समय और राह देखता है, उसी प्रकार भक्त भी मान-प्रतिष्ठाकी राक्षसीसे डरते हैं और उससे पल्ला छुड़ानेके लिये भगवान्‌से आर्त प्रार्थना करते हैं।

गणेशनाथको भला इस सुख-भोगसे क्या करना था। उन्हें तो वहाँ नरककी दारुण यन्त्रणा मालूम हुई और रातभर राम-राम करके उन्होंने समय काटा। फूलकी सेजपर कंकड़ विखेर दिये और एक-एकको चुनकर हरिका नाम लेते रहे तथा भगवत्-स्मरण कर-करके आँसू बहाते रहे। नींद भला उन्हें कैसे आती! प्रातःकाल जब शिवाजी गणेशनाथजीके दर्शनके लिये पुनः आये तो देखा कि गणेशनाथजी रोते-रोते कंकड़ चुनते जाते हैं और भगवान्‌का नाम ले-लेकर पुनः विखेरते जाते हैं। शिवाजीने हाथ जोड़कर बहुत श्रद्धा-विनयसे पूछा—'महाराज! रात सुखसे नींद तो आयी, किसी प्रकारकी असुविधा तो नहीं हुई?' गणेशनाथजी-ने स्नेहाकुल शब्दोंमें कहा—'हाँ, आजकी रात मेरी सुफल रही—रातभर हरिस्मरण होता रहा—इससे बढ़कर कौन-सा सुख है?' इसके उपरान्त महात्मा गणेशनाथजीने विषय-सुखोंकी तुच्छता और भगवत्सुखकी श्रेष्ठताको बहुत ही प्रेमभरे शब्दोंमें शिवाजीको समझाया। अब शिवाजीकी आँखें खुलीं। गणेशनाथने अश्रुपूर्ण गद्‌गद वाणीमें कहा—

कदा वृन्दारण्ये विमलयमुनातीरपुलिने
चरन्तं गोविन्दं हलधरसुदामादिसहितम्।
अये कृष्ण स्वामिन् मधुरमुरलीवादन विभो
प्रसीदेत्याक्रोशन् निमिषमिव नेष्यामि दिवसान्॥

'यमुनाजीका सुन्दर पुलिन हो, वृन्दावनके सुन्दर वनोंमें वंशी बजाते हुए हलधर और सुदामा आदि प्यारे गोपोंके साथ आप विचरण कर रहे हों, हे मेरे प्राणनाथ! हे मेरे मदनमोहन! ओ

मेरे चितचोर! मेरे ऐसे दिन कब आवेंगे, जब मैं तुम्हारी इस प्रकारकी छविको हृदयमें धारण किये पागलोंकी भाँति कृष्ण-कृष्ण चिल्लाता हुआ अपने जीवनके सम्पूर्ण समयको निमिषकी नाईं बिता दूँगा ?'

शिवाजीने हाथ जोड़कर क्षमा-याचना की। इसपर गणेश-नाथजीने कहा—

धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान्
सेवस्व साधुपुरुषाञ्जहिं कामतृष्णाम्।
अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु मुक्त्वा
सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम्॥
(श्रीमद्भा० माहा० ४। ८०)

'धर्मका आचरण करो और विषयवासनारूपी जो लोकधर्म हैं उन्हें छोड़ दो। सत्पुरुषोंका निरन्तर संग करो और हृदयसे भोगों-की इच्छाको निकालकर बाहर फेंक दो। दूसरोंके गुण-दोषोंका चिन्तन करना एकदम त्याग कर दो। श्रीहरिकी सेवा-कथारूपी जो रसायन है उसका निरन्तर पान करते रहो। बस, इसीको मैंने तो मनुष्यमात्रका कर्तव्य समझा है।'

गणेशनाथने अब देखा कि संसारमें उनकी कीर्ति-ख्याति बढ़ रही है जो उनकी साधनाकी बाधक है, अतएव उन्होंने सब कुछ छोड़-छाड़कर जंगलमें रहना ही उचित समझा। साधनामें एक क्षणका भी अन्तराय साधु-महात्माओंको सह्य नहीं होता। अब गणेशनाथजी जंगलमें एकान्तवास करने लगे। वहाँ वे अहर्निश प्रभुका नाम-कीर्तन किया करते। उनके मधुर कीर्तनका प्रभाव

इतना सुन्दर पड़ा कि वहाँके जंगली पशु-पक्षी भी उनके आस-पास जुट जाते और विमुग्ध दृष्टिसे उनका कीर्तन देखते तथा उनकी तालमें ताल मिलाकर बड़े ही प्रेमसे गाते—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
(कलिसं० १)

गणेशनाथजीकी भक्ति-सुरभिसे समस्त वन मँह-मँह हो गया। लोग उन्हें स्वयं 'पाण्डुरङ्ग' कहने लगे। उन दिनों ऐसी बात हो गयी थी कि गणेशनाथ जिसे भी स्पर्श कर देते, वही प्रभुप्रेममें पागल हो जाता! ऐसे दीवानोंकी संख्या बढ़ती गयी। कुछ लोगोंको मजाक सूझा! वे गणेशनाथके पास जाकर कहने लगे कि आपको हम तभी सिद्ध-महात्मा समझें जब आप इस वृक्षको अपना शिष्य बनावें। गणेशनाथको उस व्यंगसे क्या करना था? परंतु होनी कुछ और थी, कीर्तनकी धुनिमें जब मस्त होकर नाचने लगे तो अचानक उनका हाथ उस पुराने वृक्षको स्पर्श कर गया। लोगोंने देखा कि सूखा हुआ पुराना वृक्ष पुनः हरा हो गया। गणेशनाथने कहा—यह बेचारा पुराना वृक्ष बहुत दिनोंसे भूखा तड़प रहा है, इसे भोजन देना चाहिये और उस समय वहाँ जो कुछ अन्न-जल था, वह सब देनेके लिये जैसे ही हाथ बढ़ाया तो लोगोंने देखा कि वृक्षकी धड़ एक जगह ऐसे खुल गयी मानो ग्रास लेनेके लिये मुँह खोला है। लोग आश्चर्यमें पड़ गये और पुनः गणेशनाथके साथ मिलकर 'विट्ठल, विट्ठल' गाने लगे।

प्रभुके प्रेममें मतवाले जिस स्थानमें रहते हैं, वहाँके परमाणुओं-में ही कृष्ण-प्रेम भरा रहता है और वहाँ सभी कुछ हरि! हरि! की तालपर नाचता रहता है। एक बार गणेशनाथजी कीर्तन क रहे थे—गाते-गाते वे वेसुध हो गये और खूब जोर-जोरसे विट्ठल-विट्ठल, हरि-हरि, गोविन्द-गोविन्द चिल्लाने लगे। अब क्या था! वहाँके पत्थर भी आपसमें खूब जोरसे मिले और लोगोंने देखा और सुना कि वे भी गणेशनाथके कीर्तनसे मुग्ध होकर आनन्दमग्न होकर नाच रहे हैं। समस्त प्रकृति प्रभुके रास-में सम्मिलित होनेके लिये आनन्द और प्रेमसे विभोर होकर नाच उठती थी। प्रभुके नामका यही प्रभाव है। संसारके सभी प्राणी—चर-अचर इस अमृतको पीनेके लिये व्याकुल हैं—जबतक हमें इस नामका अमृत नहीं मिलता तभीतक सारी दौड़-धूप है—हरिके रसमें सराबोर हो जानेपर तो बस, सब कुछ हरि-ही-हरि हो जायगा और उसी समय हम अधिकाधिक प्रेमसे नामका रस लेते हुए, प्रभुको साक्षात् देखते हुए, भीतर-बाहर उसे ही देखते हुए, सुनते हुए, स्पर्श करते हुए गाते रहेंगे—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

(ना० पु० १।४१।१५)

गणेशनाथ तथा अन्यान्य भक्तोंके चरित्रके श्रवण-मननका यही तो परिणाम है। भक्तोंके चरित्रसे हृदय पवित्र होकर हरिका निरन्तर निवासस्थान हो जाता है।

बोलो भक्त और उनके भगवान्की जय!

भक्त जोग परमानन्द

मुखजितशरदिन्दुः केलिलावण्यसिन्धुः
करविनिहितकन्दुर्वल्लवीप्राणबन्धुः ।
वपुरुपसृतरेणुः कक्षनिक्षिप्तवेणु-
र्वचनवशगधेनुः पातु मां नन्दसूनुः ॥

संत-महात्मा परमात्माके व्यक्तस्वरूप हैं । संसारमें संत-महात्माओंके द्वारा अपना दिव्य संदेश परमात्मा सुनाया करते हैं। संत मायातीत होते हैं, मुक्त होते हैं। जगत्की कोई ममता, कोई सम्बन्ध उन्हें बाँध नहीं सकता। संसारमें रहते हुए भी वे संसारसे परे होते हैं। प्रभु दयाकर संसारमें संत-महात्माओंको इसलिये भेजते हैं कि हम उनकी वाणी सुनकर अपने जीवनको धन्य बनावें, उनके पावन चरणोंका दर्शन कर कृतार्थ हों। संत-महात्माओंकी यह अपार अहैतुकी दया ही है कि वे हम संसारी जनोंके हितकी चिन्ता रखते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीने संत-हृदयकी नवनीतसे तुलना करके पीछे बतलाया है कि मक्खन तो स्वयं तप्त होनेपर पिघलता है, परंतु संतजन परदुःखसे दुखी होते हैं। संसारके प्राणियोंको भवतापतापित देखकर संतजनोंका हृदय पिघल जाता है और वे अपने आचरण, वाणी, उपदेशसे लोगोंको संसारकी ज्वालासे बचानेकी चेष्टा करते हैं। ऐसे निरपेक्ष, शान्त, निर्वैर और समदर्शी संतकी प्रशंसामें भगवान्ने भक्त उद्धवसे कहा है—

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥

निष्किञ्चना मय्यनुरक्तचेतसः
शान्ता महान्तोऽखिलजीववत्सलाः ।
कामैरनालब्धधियो जुषन्ति यत्
तन्नैरपेक्ष्यं न विदुः सुखं मम ॥
(श्रीमद्भा० ११ । १४ । १६-१७)

'ऐसे किसी वस्तुकी इच्छा न रखनेवाले, शान्तचित्त, निर्वैर, सर्वत्र समभावसे मुझको देखनेवाले और निरन्तर मेरा मनन करनेवाले प्रेमी भक्तोंकी चरणरजसे अपनेको पवित्र करनेके लिये मैं सदा-सर्वदा उनके पीछे-पीछे घूमा करता हूँ। मुझमें चित्तको अनुरक्त कर रखनेवाले, सर्वस्व मुझको अर्पण करके अकिञ्चन बने हुए ऐसे शान्त और मेरे नाते सब जीवोंके प्रति स्नेह करनेवाले तथा सब प्रकारकी कामनाओंसे शून्य हृदयवाले महात्मा जिस परम सुखका अनुभव करते हैं उस निरपेक्ष परमानन्दको दूसरे लोग नहीं जानते।'

दक्षिण भारतके बरसी नामके एक गाँवमें भक्त परमानन्दका जन्म हुआ था। बहुत बचपनसे ही प्रभुके गुण-श्रवण, नाम-स्मरण-कीर्तनमें इनका चित्त लगने लगा था। जब ये छोटे बालक थे, इनके गाँवमें हरि-कथा और हरि-सङ्कीर्तन हुआ करता था; जिसमें ये नित्य नियमपूर्वक शामिल होते थे। इन्हें हरि-कथा तथा कीर्तनका एक प्रकारका चसका लग गया था। कभी-कभी रातको देरतक जब कथा और कीर्तन होता रहता तो ये भूख-प्यास भुलाकर मन्त्रमुग्ध-से होकर सुना करते थे। प्रभु जिसपर दया करते हैं, उसे ही अपनी भक्तिका वरदान देते हैं।

एक दिनकी बात है। रात बहुत बीत चुकी थी, फिर भी कथा चल रही थी। भक्तजन प्रेमविमुग्ध होकर रसपान कर रहे

थे। परमानन्द भी आँख मूँदे ध्यानमें मस्त हो रहे थे। त्रिभुवन-मोहन श्यामसुन्दरकी सलोनी साँवरी सूरतकी छबिका वर्णन हो रहा था तथा व्यासजी महाराज प्रेम-विभोर होकर श्रोताओंके हृदयमें अमृत बरसा रहे थे। वर्णन करते-करते वे उस रूपके जादूपर मुग्ध होकर आनन्दप्लुत होकर गा उठे—

मैं अपनो मन हरि सों जोर्‌यो। हरि सों जोर सबन सों तोर्‌यो॥
नाच नच्यो तब घूँघट कैसो, लोक लाज डर पटक पिछोर्‌यो।
कहनो होय सो कहो सखी री, कहा भयो काहू मुख मोर्‌यो॥
नवललाल गिरिधरन पिया सँग प्रेम रंगमें यह तन बोर्‌यो।
......प्रभु जोग हसन दे लोक वेद तिनका ज्यों तोर्‌यो॥

आज परमानन्दके आनन्दका क्या ठिकाना! आनन्दमें उनका हृदय झूम उठा। एक बार उन्होंने जब आँखें खोलीं तो सामने देखा कि वही अलौकिक छबि परमानन्दको अपनेमें मिला लेनेके लिये मधुर-मधुर संकेत दे रही है—आँखें रूपका मधु पीकर झँप गयीं और भीतर पुनः वही रासका महामिलन! आज जोग परमानन्दके घूँघटका पट हट गया है—वे भीतर-ही-भीतर प्रभुके मिलनके रसमें सराबोर हैं। वे प्रत्यक्ष देख रहे हैं, दृढ़तापूर्वक अनुभव कर रहे हैं कि प्रभुजी आये हुए हैं और परमानन्दको अपनी छातीसे सटाकर आँसुओंसे नहला रहे हैं—कर-कमलोंसे धीरे-धीरे सहला रहे हैं। प्रभुजीके आँसू परमानन्दके मस्तकको भिगोकर कृतार्थ कर रहे हैं और परमानन्दकी अश्रुधारा अविरलरूपसे प्रवाहित होकर प्रभुजीके चरणोंको पखार रही है। इस आनन्दका क्या कहना? भीतर-बाहर समानरूपसे प्रभुके मधुर-मधुर स्पर्शकी

दिव्य अनुभूति हो रही है। ऐसे सुन्दर अवसरपर प्रभुकी आरती करनेके लिये परमानन्दका मन ललचा उठा। फिर क्या था, आरती-गान होने लगा--
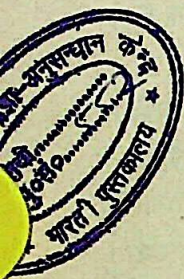
आरती जुगलकिसोर की कीजै।
तन मन धन न्योछावर दीजै॥
गौर स्याम मुख निरखत जीजै।
प्रेम स्वरूप नैन भर पीजै॥
रवि ससि कोट बदनकी सोभा।
ताहि देखि मेरो मन लोभा॥
नंदनँदन वृषभानुकिसोरी।
······प्रभु अविचल जोरी॥

जोग परमानन्दको लोग अब पागल कहने लगे। जगत्की दृष्टिमें तो भक्त पागल है ही। परंतु इस पागलपनका स्वाद जिसे एक क्षणके लिये भी मिल गया फिर वह इसे छोड़कर होशमें आने ही क्यों लगा? संसारकी दृष्टिमें जो कुशल-चतुर है, उसे ही संसार चाहता है। संग्रह-परिग्रहका भूखा संसार संग्रही-परिग्रही-की ही पूजा करता है। परमानन्दको जगत्की मान-बड़ाईसे क्या मतलब था? संसारने उनकी ओरसे आँखें फेर लीं, यह उनके लिये कल्याणकारी ही हुआ। प्रभु जिसपर दया करते हैं, उसे ही संसारकी दृष्टिमें पागल बना देते हैं। संसार ऐसे पागलोंकी ओर-से आँखें फेर लेता है और पागल भक्त एकनिष्ठ होकर संसार-की विघ्न-बाधाओंसे मुक्त होकर एकान्तभावसे अपने प्रियतम परमात्माकी परिचर्या करता है। परमानन्दका भी, बस, अब एक ही काम रहा—संसारकी ओरसे आँखें मूँदकर सर्वान्तःकरणसे प्रभुकी पूजा-अर्चा करना। राम, कृष्ण,

नारायणके सिवा वे जिह्वापर एक भी शब्द आने नहीं देते थे। परमात्माकी मूर्तिके सिवा मनमें कुछ आता ही नहीं था। नाम-स्मरण, हरि-कीर्तन और अहर्निश भजन—बस, यही उनका एकमात्र काम था। सोते-जागते, उठते-बैठते, बस, प्रभुका स्मरण, प्रभुका चिन्तन और प्रभुका गुणगान। सदैव प्रभुकी मधुर मूर्ति सामने रहती थी और एकोन्मुखी होकर सारी वृत्तियाँ प्रभुके चरणोंमें प्रवाहित हो रही थीं।

नाम-स्मरणका चसका लगना बड़ा ही कठिन है, पर जहाँ एक बार यह चसका लगा फिर एक पल भी नामसे खाली नहीं जाता। श्रीतुकारामजी महाराजने नाम-स्मरणकी बड़ी ही मधुर व्याख्या की है। वे कहते हैं—नाम-स्मरण यह है कि चित्तमें रूप-का ध्यान हो और मुखमें नामका जप हो। अन्तःकरणमें ध्यान जमता जाय, ध्यानमें चित्त रँगता जाय, चित्तकी तन्मयता होती जाय, यही वाणीमें नामके बैठ जानेका लक्षण है। परमानन्दको नाम-स्मरणका ऐसा चसका लगा कि एक क्षणके लिये भी वे नाम-रसपान करनेसे हटते न थे। भजनका वियोग भक्तके लिये कैसे सह्य हो? श्रीमद्भागवतमें कहा है—

त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठ-
स्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात्।
न चलति भगवत्पदारविन्दा-
ल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः॥
(११।२।५३)

यदि भगवान्के भक्तसे कहा जाय कि तुम आधे क्षण या आधे निमेषके लिये भी भगवच्चरणोंका चिन्तन छोड़ दो और त्रिलोकीके सम्पूर्ण वैभवको ले लो, वह इस बातको भी स्वीकार

नहीं करता। उसका चित्तरूपी भ्रमर तो अचञ्चलरूपसे भगवान्‌के उन चारु चरणकमलोंमें ही लगा रहता है, जिनको निरन्तर ध्यानपूर्वक खोजनेपर भी देवता नहीं पा सकते। ऐसा वह भक्त कुछ भी नहीं चाहता।

जोग परमानन्द प्रभुका षोडशोपचार पूजन करते तथा नित्य नियमपूर्वक मूर्तिके सम्मुख सात सौ बार साष्टाङ्ग नमस्कार करते। यही उनका नियम था। आँखोंसे दिव्य भगवद्विग्रह देखना और उनके जलसे उसे नहलाना, कानोंसे भगवद्गुण सुनना, जिह्वासे भगवद्गुणोंको गाना, नाकसे भगवान्‌की दिव्य गन्धको लेना, हाथोंसे प्रभुकी अर्चा करना, पैरोंसे कीर्तन-स्थान तथा कथाओं और तीर्थोंमें जाना, मस्तकसे प्रभुके चरणोंमें प्रणिपात करना—यही परमानन्दकी एकमात्र दैनिक चर्या थी। उनका यह नियम था कि श्रीमद्भगवद्गीताके एक श्लोकका उच्चारण करना और देवताके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणिपात करना। इस प्रकार अठारहों अध्यायके कुल सात सौ श्लोकोंको ये उच्चारण करते जाते थे और परमात्माके दिव्य विग्रहके सम्मुख साष्टाङ्ग प्रणाम करते जाते थे। ये सात सौ नमस्कार कर चुकनेपर ही भिक्षामें प्राप्त अन्नको ग्रहण करते थे। धर्मग्रन्थोंमें यह बात आती है कि पूजन और यज्ञ किये बिना ही जो अन्न-जल ग्रहण करता है वह पाप खाता है और वह व्यक्ति शूकरके समान है।

इस कलिकालमें प्रभुके नाम-स्मरणके सिवा और कोई साधन है ही नहीं। शरीरसे संसारका कार्य करते हुए भी मनको प्रभुमें लगाये रखना तथा मनसे परमात्माका स्मरण-चिन्तन करते रहना यही हम संसारी पुरुषोंके लिये साधन है—ऐसा जोग परमानन्दने

बतलाया है। इसे ही गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

करसों करम करिय विधि नाना। मन राखिय जहँ कृपानिधाना॥

मन यदि पूर्णतया प्रभुके रंगमें रँग जाय, यदि सर्वान्तःकरणसे हरिमें एकरूपता स्थापित हो जाय तो सारे कर्म और व्यापार यज्ञके रूपमें परिणत हो जाते हैं ओर वे स्वतः श्रीकृष्णार्पण होते जाते हैं, उन्हें श्रीकृष्णार्पण करना नहीं पड़ता। इसका मुख्य हेतु यह है कि बुद्धि जब श्रीकृष्णार्पण हो गयी तो सारे व्यापार प्रभुकी उपासनाके रूपमें ही व्यक्त होंगे। संसारमें मन न बसाकर प्रभुमें इसे बसाना और प्रभुकी पूजा समझकर समग्र कर्मको योगस्थ होकर निर्लिप्तभावसे करते जाना—यही परमानन्दजीका उपदेश है और यही उपदेश हमारे ऋषि-मुनियोंका भी है।

सात सौ बार साष्टाङ्ग प्रणिपात करना और गीताजीके सात सौ श्लोकोंका पारायण करना साधारण बात नहीं है। भक्त तो चाहता है कि वह बराबर प्रभुका रूप निरखा करे और उसका मस्तक सदैव प्रभुके चरणोंमें लोटता रहे। उसे इसीमें आनन्द आता है। एक समयकी बात है। सावन-भादोंका महीना था। पानी अभी खूब जोरसे बरस चुका था। आकाशमें अब भी ऊदे-ऊदे मेघ छाये हुए थे। पृथ्वीपर कीचड़ हो गया था, परंतु परमानन्द श्रीपाण्डुरङ्गजीके मन्दिरके सामने साष्टाङ्ग प्रणाम करते जा रहे थे और उनका सारा शरीर कीचड़से लथपथ हो गया था। शरीरकी ओर तो उनका ध्यान ही न था। वे नमस्कार करने तथा गीताके श्लोकोंको उच्चारण करनेमें इतने व्यस्त थे कि कहाँ क्या हो रहा है, इसका उन्हें पतातक न था और उनका शरीर

तथा कपड़े कीचड़में गंदे हो रहे हैं इसका भी उन्हें ध्यान नहीं हुआ।

एक साहूकार उसी दिन वहाँ बाजार करने आया था। परमानन्दकी तितिक्षा और वैराग्य देखकर उसे उनपर बड़ी श्रद्धा हुई। रेशमी कपड़ेका एक थान लेकर वह जोग परमानन्दजीकी सेवामें उपस्थित हुआ और हाथ जोड़कर विनय और आदरके साथ प्रार्थना करने लगा—'महात्मन्! यह मेरी तुच्छ सेवा स्वीकार कर लें तो मुझपर बड़ा अनुग्रह हो।' जोग परमानन्दने कोमल शब्दोंमें, जिससे उस व्यापारीके चित्तको व्यथा न हो, कहा—'मुझे इन सुन्दर वस्त्रोंसे क्या काम? मेरे लिये तो फटे चिथड़े ही पर्याप्त हैं। इस बहुमूल्य वस्त्रको भगवान् श्रीपाण्डु-रङ्गके चरणोंमें चढ़ा आओ। सारे आनन्द और सौन्दर्यके वे ही भोक्ता हैं। उनकी सेवा करके जीवन कृतार्थ करो। मेरे लिये तो भिक्षाका अन्न और रास्तेमें पड़े हुए फटे चिथड़े ही प्रभुकी दयासे बहुत सुखदायक हैं। सुन्दर वस्तुएँ तो श्रीरुक्मिणीवल्लभकी सेवा-में समर्पित होनी चाहिये।' जोग परमानन्दजीने व्यापारीको लाख समझाया, परंतु उसने तो हठ कर ली थी कि रेशमी थान वह परमानन्दकी सेवामें ही अर्पित करेगा। भक्त किसीके चित्तको दुखी नहीं करते; क्योंकि समग्र सृष्टिमें उनकी भगवद्बुद्धि रहती है और समस्त संसारके चर-अचरको वे अपने प्रियतम प्राणनाथ-की प्रतिमूर्ति मानते हैं। इसी कारण बाध्य होकर परमानन्दने रेशमी थान स्वीकार कर लिया।

आज परमानन्दने रेशमी वस्त्र धारण किये हैं। आज भी जोरोंकी वर्षा हो रही है और श्रीपाण्डुरङ्गजीके मन्दिरके सामनेकी

जमीन कीचड़से भरी पड़ी है। मेघ अब भी झमाझम बरस रहे हैं। आज परमानन्दने अपने वस्त्र नीचेसे समेट लिये जिसमें साष्टाङ्ग नमस्कार करते समय कीचड़में पड़कर वस्त्र गंदा न हो जाय। आजसे पूर्व परमानन्दको इस प्रकारका सङ्कोच कभी नहीं हुआ था। संसारके स्पर्शमें जो भी आया उसे संसारने अपने पंजेमें ले लिया। बड़े-बड़े संत-महात्मा, साधु-संन्यासी, ऋषि-मुनि जैसे ही संसारका संग्रह करने लगे वैसे ही संसारने उनके मुँहपर कालिख पोती।

काजलकी कोठरीमें कितनोहू सयानो जाय,
एक लीक काजलकी लागिहै पै लागिहै॥

यह संसार तो काजलकी कोठरी है। कितना भी चतुर कोई क्यों न हो, इसमें जानेवालेको कालिख कहीं-न-कहीं अवश्य लगेगी ही। परमानन्द-जैसे वैराग्यसम्पन्न महात्माको भी रेशमी वस्त्रकी बहुमूल्यता आज मुग्ध कर रही है और खुलकर साष्टाङ्ग-नमस्कार करनेमें उन्हें सङ्कोच हो रहा है। भोगोंकी गन्धमात्रसे ही मनुष्य पतित हो जाता है।

परमानन्द नमस्कार करते जा रहे थे, परंतु आज उनका ध्यान श्रीपाण्डुरङ्गकी मनोहर मूर्तिपर कम था—आज बार-बार उनकी आँखें रेशमी वस्त्रपर चली जाती थीं कि कहीं कपड़ा गंदा तो नहीं हो रहा है! भगवान् भक्तकी परीक्षा भी लेते हैं और उस परीक्षामें सफल होनेकी उसे शक्ति भी देते हैं। भक्तने रेशमी वस्त्रमें छिपे हुए अपने शत्रुको परख ही तो लिया। जब शत्रु परखमें आ गया तब तो आधा काम हो गया। आज यह रेशमी

वह्न मेरी निष्ठाको भङ्ग करनेपर तुला हुआ है, इसलिये इसका ही पहले अन्त कर देना होगा। साधक जो सच्चे हृदयसे प्रभुकी खोज कर रहे हैं, बड़े-से-बड़े प्रलोभन और आकर्षणको ठुकरा देते हैं और आँख फेरकर उस ओर देखतेतक नहीं। अस्तु,

परमानन्दको अपनी भूलपर भारी दुःख हुआ। इसके प्रायश्चित्तस्वरूप उन्होंने निश्चय किया कि वे अपने शरीरको यथेष्ट दण्ड दिये बिना न मानेंगे। उन्होंने अपने रेशमी कपड़ेके टूक-टूक करके फेंक दिये तथा दो बैलोंको जुतवाकर अपनेको सर्वथा नग्नकर उसमें बाँध दिया। बैल परमानन्दके शरीरको जंगलके कण्टकमय मार्गकी ओर लेकर भागे। परमानन्दका सारा शरीर काँटोंसे बिंध गया तथा खूनकी धारा बहने लगी। वे 'हरि-हरि' कहते जाते थे। शरीरको जितना ही कष्ट होता था, उतने ही प्रेमसे वे प्रभुके नामका स्मरण करते जाते थे। कष्टकी पराकाष्ठा हो चुकी थी। जो भक्त प्रभुको प्राणोंसे भी प्यारे हैं, उनके कष्टको प्रभु भला, कैसे सहन कर सकते हैं ? जिन्होंने डूबते हुए गजराजको उबारा, द्रौपदीकी लाज रक्खी, प्रह्लादकी रक्षा की; वही भक्तवत्सल भगवान् आज परमानन्दको कैसे बिसारते ? भगवान् सब कुछ सहन कर सकते हैं, परंतु भक्तोंका कष्ट उनसे नहीं सहा जाता! उनका नाम ही भक्तवत्सल है। भक्तोंको कष्टमें देखकर प्रभुका हृदय द्रवित हो जाता है और वे एक क्षणका विलम्ब भी सह नहीं सकते! अस्तु, ग्वालेके रूपमें प्रभु प्रकट हुए। उन्होंने बैलोंके जूएमें बँधे हुए परमानन्दके रक्तप्लावित शरीरको

पहले खोल दिया और पुनः अपने कोमल करोंसे उसे सहलाया। सारे शरीरको अपने दिव्य स्पर्शके द्वारा दिव्य और निरामय कर दिया। जोग परमानन्दका सारा शरीर देवताका हो गया। प्रभु अपने भक्तके पूर्व कष्टका स्मरणकर उसे पुचकारने लगे। वे बार-बार परमानन्दसे कहने लगे—'अरे, तुमने इतना भीषण कष्ट क्यों मोल लिया ? भला, तुम्हारा अपराध ही कौन-सा था कि इस प्रकार अपने शरीरको कष्ट दिया ? तुम तो मेरे परमप्रिय भक्त हो। तुम जो कुछ भी खाते-पीते हो वह मेरे ही मुखमें जाता है। तुम जो पद-सञ्चरण करते हो वह मेरी ही प्रदक्षिणा होती है। तुम जो भी बातें करते हो वह मेरी स्तुति-प्रार्थना है। जब तुम सुखसे लेट जाते हो तो मेरे चरणोंमें तुम्हारा साष्टाङ्ग हो जाता है। इस भीषण कष्टका वरण कर तुमने मेरे हृदयको रुला दिया।' प्रभु भक्तकी विह्वलतापर कातर हो रहे थे। आज परमानन्दकी तपस्या सफल हुई। प्रभुने उन्हें उठाकर अपनी छातीसे लगा लिया। इस भाग्यका क्या कहना ? आज परमानन्द प्रभुसे मिलकर प्रभुमें मिल गये—प्रभुमें एकाकार हो गये ! प्रभुने अपने हृदयके भीतर अपने भक्तको छिपा लिया !!

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय !

भक्त मनकोजी बोधला

भक्त मनकोजी बोधला बरारप्रान्तके प्रसिद्ध शहर धामनगाँवके पटेल थे। इनकी स्त्रीका नाम मामाताई था। मामाताईका बाहर-भीतर सभी सुन्दर था। वह पतिव्रता स्त्री तन-मनसे पतिका अनुसरण करती थी। इनके यमाजी नामक एक इन्द्रियनिग्रही एवं वैराग्यवान् पुत्र था और भागीरथी नामकी सर्वसुलक्षणा एक कन्या। विषय-भोगोंसे चारोंका ही मन हटा हुआ था। रात-दिन भगवान् श्रीपण्ढरीनाथका भजन करना और घरके सब कामोंको उन्हींके प्रीत्यर्थं यथायोग्य सम्पादन करना इनका प्रिय कार्य था। घरमें काफी धन था; अनाजके कोठे भरे थे और गोशालामें गाय, भैंस और बैलोंकी कतार बँधा करती थी। प्रत्येक एकादशीके दिन बोधलाका पण्ढरपुर पहुँचकर भगवान्के दर्शन करनेका नियम था। एकादशीके दिन चन्द्रभागामें स्नान करके भगवान्के दर्शन करना, रात्रिको जागरण करना और द्वादशीके दिन चन्द्रभागाके तटपर ब्राह्मण-भोजन और गरीबोंको अन्न बाँटकर त्रयोदशीको घर लौट आना—यह नियम वर्षोंसे चला आता था। एक समय देशमें बड़ा भारी अकाल पड़ा, मनुष्य अन्न बिना और पशु चारे बिना मरने लगे। सब भूतोंमें अपने भगवान्को देखनेवाले बोधलासे अब नहीं रहा गया। उन्होंने एकान्तमें अपनी पत्नी मामाताईसे कहा—'प्रिये ! देशमें घोर अकाल पड़ा है। आज हमारे भगवान् दरिद्र और भूखे जीवोंका रूप धारण करके हमसे पूजा चाह रहे हैं। हमारे घरमें जो कुछ धन, जेवर और अन्न है,

सब उन्हींका है। आज उन्हींकी चीजसे उनकी पूजा करनेका सुअवसर है। यह मौका हाथसे नहीं खोना चाहिये। भूखोंको अन्न, प्यासोंको पानी, पशुओंको चारा, नंगोंको कपड़ा, रोगियोंको दवा और निराश्रितोंको आश्रय देना ही भगवान्‌की सच्ची पूजा है। परंतु इस पूजामें भी अभिमान नहीं होना चाहिये। किसीका असत्कार न हो जाय। मीठी वाणीसे सबका सत्कार करते हुए भगवान्‌को यथायोग्य भेंट अर्पण करनी चाहिये। सबमें रमण करनेवाले मेरे राम इस पूजासे बड़े ही प्रसन्न होते हैं। अतएव तुम अभीसे इस पूजामें लग जाओ। तनिक भी देर करना इस समय अनुचित होगा।

पतिकी आज्ञाका अनुसरण करनेवाली, निर्लोभा, सती मामाताईको पतिकी बातसे बड़ी ही प्रसन्नता हुई और वह खुले हाथों गरीब और दुखियोंकी सेवामें तन-मन-धनसे लग गयी। बोधलाका घर गरीब नर-नारियोंका आश्रयधाम बन गया। तमाम देशमें यह बात फैल गयी। चीनीपर चींटी और मक्खियोंकी तरह चारों ओरसे भूखे नर-नारियोंके झुंड-के-झुंड आने लगे और मामाताई बड़ी ही प्रसन्नताके साथ सत्कारपूर्वक उनको अन्न-वस्त्र बाँटने लगी। उसके उत्साह और आनन्दका पार नहीं था। इस तरह बहुत दिन बीत गये। बँटते-बँटते तो कुबेरका खजाना खाली हो जाता है, बोधलाका घर तो किस गिनतीमें था। अन्नके सारे गोदाम खाली हो जानेपर बोधलाने सम्पत्ति बेचनी शुरू की। उन्होंने अपने सारे गहने और जवाहिरात बेच दिये और उसका अन्न खरीदकर गरीबोंको बाँट दिया। कपड़े और बरतन भी घरमें नहीं रक्खे। अन्तमें अपने खानेके लिये एक दिनका भी अन्न

घरमें नहीं रह गया। पशुओंके लिये चारा नहीं रहा, तब पशुओं-को भी बाँट दिया। दरिद्रता देवी पूरे दलबलके साथ बोधलाके घरमें आ विराजी। बोधला अपनी स्त्रीसहित मजदूरी करके अपना और बच्चोंका पालन करने लगे। इस अवस्थामें बोधला और उनकी पत्नी मामाताईको जो सन्तोष और आनन्द था, उसकी तुलना बड़े-बड़े महलोंमें रहनेवाले, सब प्रकारके भोगोंसे सम्पन्न किसी भी महान् धनवान् व्यक्तिके आनन्दके साथ नहीं की जा सकती। बोधला और उनकी पत्नीका आनन्द सात्त्विक, निर्मल और आदर्श है एवं उसका आधार महान् त्याग और भगवत्-सेवा है। परंतु धनीके भोगानन्दकी भित्ति तो पापोंके कारणरूप क्षणभंगुर भोग और अभिमान है। भोगका आनन्द दूसरी जातिका है और त्यागका आनन्द उससे विलक्षण किसी दूसरी ही जातिका! भोगके आनन्दका पर्यवसान नरक और दुःखमें है, परंतु त्यागके आनन्दकी परमप्राप्ति भगवान्के परमधाम और आत्यन्तिक नित्य परम आनन्दमें होती है। त्यागका आनन्द ही असली आनन्द है। भोगानन्द तो आनन्दकी छाया है—माया-मात्र है! इसीलिये भगवान्के भक्त भोगी नहीं होकर त्यागी होते हैं। वे ज्ञानके अभिमानसे भी डरते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि अभिमानसे भगवान् नहीं मिलते। भगवान्की प्राप्ति तो एक-मात्र प्रेमसे होती है और प्रेम अभिमानके रहते होता नहीं। अस्तु। बोधलाके प्रेमसे प्रसन्न होकर भगवान्ने एकान्तमें उन्हें दर्शन दिये, जिससे उनका आनन्द और भी बढ़ गया।

एकादशीपर बोधलाको पण्ढरपुर जाना है, परंतु उनके पास पैसा एक भी नहीं है। स्त्रीको बड़ी चिन्ता हुई। बोधलाने कहा—'तुम

चिन्ता क्यों करती हो ! मैं जंगलसे सूखी लकड़ियोंका एक बोझा ले जाऊँगा और उसे पण्ढरपुरमें बेचकर अपना काम चला लूँगा।' यह कहकर नियमके सच्चे बोधलाजी चल पड़े। रास्तेमें सूखी लकड़ियोंको बटोरकर एक बोझा बाँधकर सिरपर रख लिया और निश्चिन्त भावसे प्रेमपूर्वक श्रीभगवान्‌के नामका कीर्तन करते हुए बोधला पण्ढरपुर पहुँचे। बोधलाके हृदयमें आज बड़ा ही आनन्द है। वे भगवान्‌की दयासे अपनेको भोगोंसे—मायासे मुक्त हुए जानकर फूले नहीं समाते। पण्ढरपुर पहुँचकर लकड़ियोंका बोझा तीन पैसेमें बेच दिया और पैसे लेकर चन्द्रभागाके तटपर पहुँचे। एक पैसा घाटियेको दिया और दो पैसोंकी पूजाकी सामग्री लेकर भगवान्‌का दर्शन और पूजन किया। दिनभर उपवास और रातको जागरण करनेके बाद प्रातःकाल जंगलसे फिर एक लकड़ियोंका बोझा लाये और उसे तीन पैसेमें बेचकर चन्द्रभागाके किनारे गये और तीन पैसेका आटा लेकर नित्यके नियमानुसार ब्राह्मणको भोजन करानेकी इच्छासे ब्राह्मणकी बाट देखने लगे।

बैठे-बैठे दुपहरी हो गयी, कोई भी ब्राह्मण नहीं आया। उन्होंने कई ब्राह्मणोंसे कहा, परंतु सूखा आटा लेना किसीने भी मंजूर नहीं किया। बोधला मन-ही-मन चिन्ता करने लगे, 'ठीक ही तो है, खाली आटा लेकर ब्राह्मण क्या करें, मेरे पास न नमक है, न तरकारी, न घी है, न दाल और दक्षिणाके लिये भी एक छदाम पास नहीं है। चन्द्रभागाके किनारेपर जहाँ बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंके साथ ब्राह्मणोंको खिलानेवाले इतने धनी जमा हो रहे हैं, वहाँ मुझ गरीबका सूखा आटा भला कौन ब्राह्मण लेगा ?' यों सोचते-

सोचते बोधलाकी आँखोंमें आँसू भर आये। बोधलाका हृदय इधर पसीजा, उधर भगवान् पिघल गये। और भक्तकी प्रेमभरी भेंट स्वीकार करनेके लिये बूढ़े दरिद्री ब्राह्मणके वेषमें भगवान् वहाँ प्रकट होकर बोधलासे कहने लगे—'अरे ओ भगत! मुझे बड़ी भूख लगी है, तेरे पास कुछ है तो मुझे जल्दी दे!' बोधलाने ब्राह्मणके वचन सुनकर भगवान्की बड़ी कृपा मानी, आखिर भगवान्ने ब्राह्मणको भेज तो दिया। उन्हें क्या पता था कि ब्राह्मणके वेषमें साक्षात् नारायण ही तुम्हारा प्रेमभरा आटा लेने आये हैं। बोधलाने सोचा, कहीं खाली आटेकी बात सुनकर यह भी नहीं लेंगे तो बहुत बुरा होगा और कहा—'महाराज! मेरे पास केवल थोड़ा-सा आटाभर है और कुछ भी नहीं है।' भगवान्ने कहा–'अरे भाई! जो कुछ है सो जल्दी देता क्यों नहीं। मैं कहाँ दाल-चावल और घी-शक्कर माँगता हूँ। मुझे तो भूख लगी है, आटेकी बाटियाँ बनाकर अभी खाऊँगा। ला, जल्दी दे।' बोधलाने आटा दे दिया। बोधलाका नियम था कि वह ब्राह्मणको अपने सामने ही भोजन करवाते और दक्षिणा देकर विदा करते। परंतु खाली आटा देकर आज बोधलाको ब्राह्मणसे यह कहनेकी हिम्मत न हुई कि महाराज! यहीं बनाकर खा लीजिये। अन्तर्यामी भगवान् बोधलाके मनकी जान गये और बोले—'भाई! खड़ा क्या करता है। देखता नहीं, मैं भूखों मर रहा हूँ। जल्दी कहींसे दो-चार गोबरके कंडे माँगकर ला दे तो मैं अभी तेरे सामने ही बाटियाँ बनाकर खा लूँ।' बोधला अपनी मनोकामना पूरी हुई देखकर प्रसन्न हो गये और यात्रियोंसे कुछ कंडे माँग लाये।

ब्राह्मणने चन्द्रभागामें स्नान किया और गीला कपड़ा पहने ही वह बाटियाँ बनाने बैठ गया। बोधला कहींसे आग माँग लाये। ब्राह्मणने आटा सानना शुरू किया। धन्य है! सर्वलोकमहेश्वर भगवान्, जो समस्त ऐश्वर्यके आधार हैं, लक्ष्मीजी जिनकी चरणसेवासे क्षणभर भी हटना नहीं चाहतीं, बड़े-बड़े महापुरुष जिनके नामका स्मरण होनेमें अपना सौभाग्य समझते हैं, वेदज्ञ ऋषि वेदमन्त्रोंसे जिनके प्रीत्यर्थ अग्निमें आहुतियाँ दिया करते हैं, आज वही भक्तके दिये हुए आटेको अपने हाथों सान रहे हैं। भगवान्‌की यह बान ही है, इसीलिये तो वे विदुरके साग-पात और शबरीके बेरोंपर रीझ पड़े थे। प्रेमसे अर्पित किया हुआ एक-एक पत्ता उन्हें प्रिय होता है। वे स्वयं ही घोषणा कर रहे हैं—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥
(गीता ९। २६)

'पत्र, पुष्प, फल, जल जो कुछ भी भक्त प्रेमपूर्वक मेरे अर्पण करता है, उस प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पदार्थ मैं स्वयं प्रकट होकर भोग लगाता हूँ।'

महालक्ष्मी ब्रह्माण्डके ऐश्वर्यकी अधीश्वरी हैं, उनकी कृपा विना किसीको कुछ भी नहीं मिलता, परंतु प्रभुके प्यारे भक्तोंकी अर्पण की हुई दुर्लभ वस्तुमें तो वह भी हिस्सा बँटानेको ललचाया करती हैं। देवी रुक्मिणीजीने सुदामाजीके चावलोंकी कनी भगवान्‌के हाथोंसे छीन ली थी। आज यहाँ भी रुक्मिणीजीका जी ललचाया। चट विना दाँतकी बुढ़िया बनकर बूढ़े ब्राह्मणके

बगलमें आ विराजीं और कहने लगीं, 'मुझे छोड़कर अपने यजमानका दिया हुआ अन्न क्या आप अकेले ही खायँगे ?' भगवान् मुसकरा दिये। रसोई बनने लगी।

बोधलाने सोचा, इस आटेसे तो एक ही आदमीका पेट भरना मुश्किल था, अब ये दो क्या खायँगे ? उन्हें पता नहीं था कि सारे विश्वका पेट भरनेवाले विश्वम्भर यही हैं। बाटियाँ बनीं। लक्ष्मीजीके हाथसे बनी हुई वे बाटियां अमृतको भी लजानेवाली थीं। भगवान्‌की आज्ञासे तीन पत्तलें परसी गयीं। भगवान्‌ने कहा—'भगतजी ! तुम भी साथ ही प्रसाद पाओ।' बोधलाने सोचा—'इन दोनोंहीका पेट नहीं भरेगा, मैं क्या खाऊँगा।' उन्होंने कहा—'भगवन् ! आप और माताजी भोजन करें। मैं बचा-खुचा जूठन-प्रसाद पा लूँगा।' भगवान्‌ने रहस्यभरी हँसी हँसकर कहा—'अच्छी बात है।' जगन्नायक और जगज्जननी दोनोंने भर पेट खाया और बोधलाके देखते-ही-देखते वहांसे अदृश्य हो गये। बोधलाकी पत्तल बाटियोंसे भरी थी। वह आश्चर्यमें डूब गया। उसे निश्चय हो गया कि ब्राह्मणरूपमें साक्षात् मेरे स्वामी ही पधारे थे। वह गद्‌गद हो गया और प्रसाद पाकर स्तुति करता हुआ मन्दिरमें पहुँचा।

मन्दिरमें जाकर बोधलाने भगवान्‌के दर्शन किये तो उसे स्पष्ट जान पड़ा कि भगवान् मुसकरा रहे हैं। बोधलाने गद्‌गद होकर कहा—भगवन् ! धन्य है आपकी कृपा; आप प्रेमके सामने और कुछ भी नहीं देखते। इसीसे तो बड़े-बड़े धनियोंकी विशाल चतुर्विध भोग्य सामग्रीको छोड़कर आप प्रेमवश मेरे सूखे आटे-

भगवान्‌ने कहा—'भाई ! मैं तो सभी जगह जाना चाहता हूँ, परंतु बड़ी-बड़ी जेवनारोंमें मुझको पूछता ही कौन है ?' बोधलाने कहा—'महाराज ! ऐसा भी कहीं हो सकता है ?' भगवान् बोले—'अच्छा, कल ही यह कौतुक देखना । अमुक सेठके यहाँ कल हजार ब्राह्मण जिमाये जायँगे, उनके लिये तरह-तरहकी मिठाइयाँ आजसे ही बन रही हैं। ब्राह्मणोंको निमन्त्रण दिया जा रहा है। मैं भी वहाँ जाऊँगा, तुम दूर खड़े तमाशा देखना।' बोधलाने कहा—'अच्छी बात प्रभु !'

दूसरे दिन ठीक समयपर बोधला वहाँ जा पहुँचे। देखा, पंक्तियाँ लगी हैं, हजार पत्तलें परसी गयी हैं, सेठके मुनीम निमन्त्रित ब्राह्मणोंको सूचीमें नाम देख-देखकर बैठा रहे हैं। सेठजी खड़े हैं, कोई फालतू आदमी न आ जाय, इस निगरानीमें। इतनेमें ही वही बूढ़ा कुबड़ा ब्राह्मण कमरमें एक टाटका टुकड़ा लपेटे लाठी टेकता हुआ वहाँ आ पहुँचा। उसने सेठसे कहा—'सेठजी ! बड़ी भूख लगी है ।' सेठजीने कहा—'आपको निमन्त्रण थोड़े ही मिला था, यहाँ तो निमन्त्रित ब्राह्मणोंको छोड़कर और कोई नहीं जीम सकता।' ब्राह्मणने कहा—'सेठजी ! गरीब हूँ, बहुत ही भूखा हूँ। आपके यहाँ तो पूरे हजार ब्राह्मण भोजन करेंगे, एक ज्यादा ही हो गया तो क्या है ?' सेठजीने जरा घुड़ककर कहा—'नहीं, नहीं, यों बिना बुलाये आनेवाले भिखमंगोंको खिलाने लगें तो फिर पता ही क्या लगे ? जाओ, जाओ ! यहाँ कुछ नहीं मिलेगा !' ब्राह्मणने कहा—'भूखके मारे प्राण जा रहे हैं, चला नहीं जाता, मैं तो खाकर ही जाना चाहता हूँ।' यों कहकर ब्राह्मण एक पत्तलपर जाकर बैठ गया, यह देखकर सेठजी जामेसे

बाहर हो गये। उन्होंने पुकारकर कहा—'है कोई! इस बुड्ढेको पकड़कर बाहर तो निकालो।' जमादार दौड़े, बूढ़े ब्राह्मणको पकड़कर लगे घसीटने। ब्राह्मणने कहा—'भूखों मर रहा हूँ, भाई रहम करो।' सेठजीका गुस्सा और भी बढ़ गया, उन्होंने कहा—'निकालो धक्के देकर बाहर। इसका बाप यहाँ रकम जमा करवा गया था सो यह उसे लेने आया है। कमबख्त कहींका। बड़ा शैतान है, अपने मनसे ही जाकर पत्तलपर बैठ गया है, मानो इसके बापका घर है।' बोधला दूर खड़े यह सारा तमाशा देख रहे थे। सेठके चौकीदारोंने ब्राह्मणको घसीटकर बाहर निकाल दिया।

ब्राह्मण बाहर निकलकर बोधलाकी ओर देखकर मुसकराया और बोला—'देखा न? यहाँ हम-सरीखोंको कौन जिमाता है। अच्छा, अब दूसरा तमाशा देख!' देखते-ही-देखते बड़े जोरकी आँधी आयी। छप्पर उड़ गया, पत्तलें कहीं उड़ गयीं, मिठाई नष्ट हो गयी, ब्राह्मण जान लेकर भागे। सेठका ब्राह्मणभोजन विध्वंस हो गया। भगवान्‌ने कहा—'प्यारे बोधराज! मैं अभिमानी और दम्भी मनुष्योंका पक्वान्न ग्रहण नहीं करता, मुझे तो तुझ-सरीखे भक्तकी दी हुई रूखी-सूखी रोटी प्यारी लगती है। अभिमानका फल तैंने देख ही लिया।' बोधलाको भगवान्‌की कृपा प्राप्त हुई, वह निहाल हो गये।

भगवान्‌को प्रणामकर बोधला तीसरे दिन अपने गाँवकी ओर चले। दो दिनोंसे कुछ खाया नहीं था। भूख-प्यासके मारे प्राण व्याकुल थे। विश्वम्भर भगवान्‌से भक्तका दुःख नहीं सहा गया। उन्होंने तो भक्तके योगक्षेमका ठेका ही ले रक्खा है। बात-की-बातमें रास्तेमें एक सुन्दर बाग लग गया। स्वयं वैकुण्ठनाथ

माली बने और जगज्जननी महालक्ष्मी रुक्मिणीजी मालिन ! कुआँ चलाने लगे। बोधलाने वहाँ पहुँचकर देखा, 'यह नया बगीचा कब लग गया। मैं तो इस रास्ते बीसों बार गया-आया हूँ, यहाँ तो एक पेड़ भी नहीं था।' मायाने काम किया। बोधलाने सोचा, 'भूल गया होऊँगा।' बोधला भूख-प्यासके मारे व्याकुल थे, परंतु दूसरोंके बगीचेमें कैसे जायँ ? अतएव समदुःखसुखी बोधला भगवन्नाम-कीर्तन करते हुए आगे बढ़े। मालिन बनी हुई रुक्मिणी-जीने सिरपर छाकका छबड़ा उठाया। उसमें थीं रोटियाँ, ताजा दूध और नाना प्रकारके मधुर फल। जल्दीसे बोधलाके पास पहुँचकर और छबड़ा एक ओर रखकर मालिनने विनम्र स्वरसे कहा—'भगतजी ! आप थके-माँदे मालूम होते हैं, बगीचेमें चलकर जरा विश्राम कर लीजिये। वहाँ मालिक आपकी बाट देख रहे हैं। यह छाक मैं अभी लायी हूँ, कुछ खा-पीकर जाइये। आप पण्ढरीनाथके यात्री हैं, इसीलिये मालिकने भक्तिपूर्वक आपको बुलाया है। वे बैलोंको देख रहे हैं, नहीं तो खुद ही आते। अपनी चरणरजसे हमारी झोपड़ी पवित्र कीजिये।' बोधला माँके मधुर वचनोंको सुनकर गद्गद हो गये। वह बगीचेमें गये। चतुर मालीने उनका बड़ा ही सत्कार किया और रोटी, दूध, फल आदि खिला-कर ठंडा पानी पिलानेके बाद विदा किया। बोधला ज्यों ही बगीचेसे बाहर निकले कि सारा बगीचा और माली-मालिन जादूकी तरह अदृश्य हो गये। बोधलाको कृपानाथकी कृपाका एक और प्रत्यक्ष प्रमाण मिला। वह गद्गद स्वरसे भगवन्नाम-कीर्तन करते हुए घर पहुँचे।

इस बार बोधलाकी खेती बहुत अच्छी हुई है। खूब जुवार फली है। बोधला खेतकी रखवालीपर बैठे हैं। इतनेमें देखा, कुछ चिड़ियाँ जुवार चुग रही हैं। बोधला उन्हें उड़ाने चले, परंतु दूसरे ही क्षण मनमें आया कि जो भगवान् एक बीजसे तमाम फलियोंको जुवारसे भर देते हैं, इन चिड़ियोंको भी तो उन्हीं भगवान्ने भेजा है, फिर मैं इन्हें क्यों उड़ाऊँ? यह सोचकर बोधला निश्चिन्त मनसे बैठकर कीर्तन करने लगे। चिड़ियाँ चुग-चुगाकर अपने-आप उड़ गयीं। थोड़ी देर बाद मामाताई खेतमें आयी। उसने देखा, खेत कुछ उजड़ा है, सोचा कि स्वामीने भिखारियोंको सिट्टे तोड़ दिये होंगे। घरमें दरिद्रता तो थी ही, स्त्रीके मनमें विश्वासकी कमीसे कुछ खिन्नता-सी आयी। उसने कहा— 'आप यों खेत भी भिखमंगोंको लुटा देंगे तो फिर हमलोग क्या खायँगे और कैसे लगान चुकाया जायगा। अगर अब आपने किसीको अपने हाथसे तोड़कर एक भी सिट्टा दे दिया तो आपको पण्ढरी-नाथकी शपथ है।' स्त्री इतना कहकर चली गयी।

बोधला खेतमें बैठे; यात्रियोंका एक दल पण्ढरपुर जा रहा था। साधु भूखे थे। उन्होंने कहा, 'भगतजी! आपने अकालके समय हमलोगोंके प्राण बचाये थे। आज हमें बड़ी भूख लगी है, आप उचित समझें तो दो-चार सिट्टे तोड़ दें, हमलोग आगमें भूनकर खा लेंगे।' बोधलाने कहा—'मेरी साध्वी स्त्रीने मुझे शपथ दिलवा दी है, अतः मैं तो नहीं तोड़ूँगा। आप स्वयं भले ही तोड़ लें।' खुली आज्ञा पाकर साधु खेतमें घुस पड़े; सैकड़ों साधु थे। बातकी-बातमें सारा खेत साफ हो गया। बोधला

निश्चिन्त चित्तसे भगवान्‌का गुण गा रहे थे। साधु तो खा-पीकर चलते बने। पीछेसे बोधलाका लड़का अपनी मातासहित आया और खेतको बिल्कुल उजड़ा देखकर दोनोंको बड़ा दुःख हुआ; परंतु वह दुःख था क्षणिक ही। जब उन्होंने बोधलाके मुखसे सुना कि पण्ढरीके भूखे यात्रियोंने अन्न खाया है, तो खेतका अन्न बहुत अच्छे काममें लगा जानकर वे भी संतुष्ट हो गये! धन्य!

गाँवमें खबर फैल गयी कि बोधलाके खेतमें कुछ भी नहीं रहा। लोग तरह-तरहकी आलोचना करने लगे। किसीने कहा—'बोधला बड़ा भक्त है, उसकी दयालुतासे भगवान् उसपर राजी हैं।' दूसरेने कहा—'तभी तो भगवान् उसे मनमाना दे भी देते हैं।' पाँचों अँगुली एक-सी नहीं होती? गाँवमें बोधलासे डाह करनेवाले कुछ दुष्ट प्रकृतिके लोग भी थे। उनमेंसे एकने कहा—'देखेंगे, भगवान् अबकी उसे किस तरह बचाते हैं। लगानका रुपया चुकाते समय बच्चाजीकी आँखें खुल जायँगी।' दुष्टोंने षड्यन्त्र रचा। लगान-अफसरसे जाकर कहा कि 'जबतक बोधला-का लगान नहीं चुकेगा, तबतक हमलोग भी कुछ नहीं देंगे, इसलिये पहले उससे लगान वसूल किया जाय।' उन्होंने गाँवमें भी सबसे कह दिया कि जो कोई हमारे इस प्रस्तावसे सहमत न हो वह पहले बोधलाका लगान चुका दे। अफसरने हवलदारको बोधलाके घर भेजा और लगानके रुपये जल्दी देनेको कहा। बोधलाके घरमें न रुपया था, न जेवर और न अन्न ही था। वह लगान कहाँसे चुकाते। कलका वादा करके हवलदारको विदा

किया। मामाताईके पास कुछ पैसे थे, उन्हें लेकर वह रातको नगाउ नामक एक साहुकारिनके घर गये और बोले कि 'माता! ब्याजके पैसे पहले लेकर मुझे इतने रुपये उधार दो।' उसने स्वीकार कर लिया और कल सवेरे ले जानेको कहा। उसने घरतीमें रुपये गाड़ रक्खे थे, परंतु जब उसने सुना कि बोधलाके खेतमें कुछ भी नहीं रहा है तब रुपये डूबनेकी आशङ्कासे उसका भी मन बदल गया। उसने दूसरे दिन सबेरे बोधलाको सूखा जवाब दे दिया। गाँवमें और कोई साहूकार था नहीं। बोधला अब करे तो क्या? चुपचाप भगवान्के नाम-गुणोंका चिन्तन करते हुए बोधला रुपये उधार लेनेकी गरजसे रलेरास नामक समीपके गाँवको गये। इधर लोगोंने हल्ला कर दिया कि बोधला भाग गया।

हवलदार कुर्की लेकर आ गया और उसने मामाताईको दोनों बच्चोंसहित घरसे वाहर निकालकर घरमें ताला लगा दिया और गाय-बकरियोंको भी कुर्क कर दिया। भक्तकी इस विपत्तिको भगवान् पण्ढरीनाथ अब नहीं सह सके। उन्होंने धामण गाँवके 'बिठ्या महार'का रूप धारण किया और रुपये लेकर लगान-अफसरके पास जाकर नम्रतासे अभिवादन किया और कहा कि 'सरकार! ये लगानके रुपये मनकोजी बोधराज पटेलने भेजे हैं। इन्हें लेकर रसीद दीजिये।' अफसरने रुपये गिनकर रसीद दे दी। घरका ताला खुलवा दिया गया, कुर्की उठ गयी। अब गाँववालोंको भी लाचार होकर सब लगान तुरंत भरना पड़ा;

परंतु उनको बड़ा ही आश्चर्य हो रहा था कि इस तंगीके समय बोधलाको इतने रुपये कहाँसे मिल गये ?

बोधलाको रलेरासमें रुपये उधार मिल गये। वह रुपये लेकर अफसरके पास पहुँचे और देरसे पहुँचनेके लिये क्षमा-प्रार्थना करने लगे। अफसरने कहा—'अभी तुम्हारा भेजा हुआ 'बिठ्या महार' रुपये दे गया है। तुम्हारे घरवालोंने रुपये भेज दिये होंगे। जाकर पता लगाओ।' बोधलाने सोचा, घरमें तो एक पैसा भी नहीं था, लगानके रुपये भरनेको कहाँसे आते। उन्होंने आकर घरपर पूछा तो मामाताईने कहा कि हमें तो कुछ भी पता नहीं है, हमने तो समझा कि आपने ही कहींसे लाकर रुपये भरे हैं, तभी कुर्की उठी है।' तब बिठ्या महारको बुलाकर पूछा तो उसने कहा, 'मेरे पास तो एक छदाम भी नहीं है, मैं आपका लगान भला कहाँसे भरता। फिर मैं तो आज घरसे बाहर भी नहीं निकला।'

अब बोधला समझ गये कि यह सारी लीला मेरे श्यामसुन्दर-की है। बोधला, मामाताई और उनकी दोनों संतान भगवान्‌के प्रेममें मस्त होकर नाचने लगे। लोगोंने आश्चर्यसे देखकर आकर कहा कि बोधलाका खेत जुवारसे भरा है।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय !

भक्त सदन कसाई

प्राचीन कालमें सदन नामके एक बहुत प्रसिद्ध भक्त हो गये हैं। ये जातिके कसाई थे। बचपनसे ही इन्हें हरि-नामजप और कीर्तनमें विशेष अभिरुचि थी। रात-दिन जब कभी समय मिलता ये प्रेमपूर्वक प्रभु-गुण-गानमें और अनन्य मनसे नाम-जपमें लगा जाते। यद्यपि जातिके थे तो कसाई, परंतु हृदयमें करुणा, प्रेम और दया इतनी अधिक थी कि ये जीववधके नामसे ही काँप उठते थे। निरीह मूक पशुओंके लिये भी ये अपने भीतर एक आत्मीयता और ममत्वका अनुभव करते थे; परंतु परिवारका पालन करना आवश्यक था, कसाई होनेके कारण दूसरा कोई पेशा था नहीं, वे मन-ही-मन इसके लिये बहुत ही दुखी रहते। पशुओंका वध उनको बहुत ही बुरा लगता, इससे उन्होंने अपने हाथोंसे कभी पशुओंका वध नहीं किया। आजीविकाके निमित्त वे मन मारकर दूसरोंके यहाँसे मांस लाकर बेचा करते थे। बीच-बीचमें जब समय मिलता 'हरि-हरि, कृष्ण-कृष्ण'की धुनमें वह प्रेमोन्मत्त होकर नाच उठते और उनका विह्वल हृदय प्रभुकी रूप-रस-मदिराको पीकर मतवाला हो जाता। प्रभुके नाम-गानमें उनकी इतनी लगन थी कि वे कभी-कभी कीर्तन और गुण-गानमें खाना-पीना भी भूल जाते और रातको रात और दिनको दिन नहीं समझते।

भक्तवत्सल भगवान् अपने भक्तकी विह्वल पुकार सुनकर अपनेको रोक नहीं सकते। वे तो सदैव अपने भक्तके लिये वैसी ही परिस्थिति ला देते हैं जिससे उसकी भक्ति प्रतिदिन दृढ़ होती जाय। हृदयमें भक्तिकी स्फुरणा भी तो प्रभुकी अनुकम्पासे ही होती है। भक्तिका क्रमशः विकास भी भगवान्‌की कृपासे ही होता है। हाँ, भक्तके हृदयमें प्रभुके लिये बेचैनी बनी रहे, विकलता बढ़ती रहे, हरिके बिना एक क्षण भी जीना अच्छा न लगे, प्रभुके नाम-स्मरण और गुण-गानके अतिरिक्त उसे स्वर्गकी भी कामना न रह जाय, नाम सुननेको और गुण गानेको मिले—इससे बढ़कर और है ही क्या ? सदनका मन हरिके चरणोंमें रम गया, रात-दिन केवल 'हरि-ही-हरि' रह गये। प्रेमके भूखे भगवान् अपनेको सदनसे भला अलग कैसे रख सकते ? गण्डकीसुत शालग्रामजी सदनके घरमें स्वयं विद्यमान थे। बेचारा भोला-भाला सदन हरिके इस रूपको पहचानता नहीं था और इसीसे मांस तौला करता था। प्रभुकी भी कैसी विचित्र लीला है ! भक्तके कोमल करोंका शीतल स्पर्श होता रहे, भक्तके मनमें सदैव ध्यान बना रहे और रात-दिनके उसके व्यवहार और व्यापारका साधन बना रहे—इसीलिये भक्तके मन रखनेवाले लीलामय प्रभु सदनके घरमें शालग्रामरूपमें उसके बटखरेमेंसे झाँक रहे थे। इधर जब भक्त भगवान्‌के लिये व्याकुल हो उठता है तो 'सरकार' भी स्वयं भक्तसे मिलनेके लिये मचल उठते हैं। 'हम भगतनके भगत हमारे'की प्रतिज्ञा तो उनकी है ही।

सदन बेचारा रात-दिन शालग्रामजीसे मांस तौलता और उसे एक साधारण बटखरा समझता। परंतु बटखरा एक व्यापारीका

प्रमुख साधन है, इसी हेतु परमात्मा शालग्रामरूपमें उसका बटखरा बनकर आये। एक साधु सदनकी दूकानसे होकर जा रहे थे कि उनकी दृष्टि सदनके बटखरेपर पड़ी। वे तुरंत पहचान गये कि हो-न-हो यह श्रीशालग्रामजीकी ही मूर्ति है। वे आये और सदनसे शालग्रामजीकी मनोहर मूर्ति माँग ले गये। सदनने प्रसन्नतापूर्वक दे दिया। साधु शालग्रामजीको पाकर फूले न समाये। कुटियामें आकर पञ्चामृत और अन्यान्य उपचार रचकर वे श्रीशालग्राम भगवान्के सम्मुख हाथ जोड़कर कहने लगे—

अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम्।
विष्णोः पादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥

हरि तो प्रेमके भूखे होते हैं और वे एकमात्र निःशेष समर्पणसे ही रीझते हैं। साधुकी पूजामें सब कुछ था, परंतु सदनकी-सी अनन्य-निष्ठायुक्त सर्वात्मसमर्पणका दिव्य माधुर्य कहाँ था? साधुने स्वप्नमें सुना कि श्रीशालग्रामजी बोल रहे हैं, 'अरे! मुझे यहाँ कहाँ ले आये? मुझे तो सदनके ही घरमें रहने देते! सदन जब मांस तौलनेके लिये मुझे उठाता था तो मुझे उसके शीतल कर-स्पर्शमें एक अपूर्व प्रेमालिङ्गनका आनन्द मिलता था, जब वह ग्राहकोंसे बातें करता था तो मैं उसकी प्रेमातुर प्रार्थनाके शब्द सुनता था। मेरा नाम ले-लेकर जब अत्यन्त विह्वलताके साथ नाचता तो मैं भी उसके हृदयके वृन्दावनमें नाचने लगता। उसके प्रेमाश्रुओंमें भींगकर जो आनन्द मुझे मिला है, वह तुम्हारे पञ्चामृतमें स्नानकर न मिला! उसने प्रेम-विह्वल स्नेहार्द्र शब्दोंमें एक बार ही जब 'प्राणनाथ हरि!' कहकर पुकारा, उसमें जितनी वेदना और आकर्षण था, उसमें मुझे खींच लेनेकी जितनी शक्ति

थी, वह तुम्हारे विविध स्तोत्रोंमें नहीं मिली। उस प्रेमके पुजारी सदनके घर मुझे पहुँचा आओ, मुझे उसके बिना एक क्षण भी कल नहीं, शान्ति नहीं, सुख नहीं, चैन नहीं। भक्तके प्रेमपूरित हृदयमें प्राणवल्लभ प्रभुकी जो मञ्जुल मूर्ति है, वह तो वहीं ही श्रद्धाके सघन कुञ्जोंकी छायामें प्रेमकी यमुनाके तटपर विचरना चाहती है। प्रेमीका हृदय ही भगवान्‌का सर्वसुन्दर मन्दिर है। साधु महाराज दौड़े-दौड़े सदनके घर गये और श्रीशालग्रामजीकी मूर्ति दे आये। साथ ही उसको भगवत्कृपाका महत्त्व भी बता आये।

सदनको जब यह पता चला कि उसका बटखरा सचमुच श्रीशालग्रामजीकी शिला है, जो साक्षात् विष्णुभगवान्‌की मूर्ति है तो उसे अपनी करनीपर बड़ा पछतावा हुआ। हाय! मैंने प्रभुकी इस मङ्गलमूर्तिको मांस तौलनेके काममें लाकर कितना जघन्य घोर पाप किया।

रात-दिन, खाते-पीते, सोते-जागते, उठते-बैठते हमारा 'प्रभु' हमारा प्राणाधार हमारी राह रोककर हमें अपना दर्शन दिया करता है। परंतु हाय रे हम अधम! हम तो उसकी उपेक्षा करनेमें ही अपनी वीरता मानते हैं। जब हृदयकी आँखें खुलती हैं, जब घूँघटका पट हटता है और प्रभुकी झाँकी होती है तब अपनी भूलपर रोना-ही-रोना आता है। हाय! हमने तब नहीं पहचाना, तब हमारी आँखें न खुलीं, किस-किस रूपमें 'वह' आता है, कब किस प्रकार वह अपनी मधुर झाँकी दे जाता है—कहा नहीं जा सकता। अर्जुनको भी कुछ ऐसा ही मोह हुआ था।

परम प्रभुको कृष्ण, यादव, सखा कहकर पुकारने तथा भोजन, शय्या और विहारमें नाना प्रकारसे असत्कृत करनेमें ! 'वह' तो हमारे नित्यके जीवनमें हमारा पति, पिता, बन्धु, पुत्र, स्त्री, सेवक, सखा आदि रूपोंमें हमारे साथ है, परंतु हम उसको बिसारकर, प्राणोंके प्राणको भुलाकर कितनी भारी भूल करते हैं; परंतु हरिकी ही दयासे जब अन्तरकी आँखें खुलती हैं तो हृदय आत्म-ग्लानि, लज्जा और अनुतापसे भर जाता है कि हाय ! मैंने अपने जीवनसर्वस्व प्राणाधारका कितना भारी अपमान और असत्कार किया। प्रभो ! क्षमा करो, क्षमा करो !! भक्तवत्सल दीनबन्धु प्रभु तो हमारे किये हुए मान-अपमानका ध्यान न कर हमारे उद्धार और निस्तारके लिये बार-बार असत्कृत होकर भी हमारे द्वारको खटखटाया करते हैं, हम संसारसे इतने अधिक चिपके हुए हैं, मायामें इतने अधिक लिपटे हुए हैं कि उनकी ओर देखने-की, उनकी पुकार सुननेकी और सुनकर हृदयका किवाड़ खोल देनेकी और हृदय-मन्दिरमें उन्हें बुलानेकी ओर प्रवृत्त ही नहीं होते। परंतु 'वे' हैं बड़े हठी ! वे तो हमारा घूँघट उठा देनेपर ही तुले हुए हैं। हम बार-बार 'ना', 'ना' कहते जाते हैं और वे बार-बार हमारे हृदयमें आ बसनेके लिये व्याकुल हो रहे हैं। सदनने शालग्रामजीको पहले दे तो दिया था; परंतु शालग्रामजी सदनको क्यों छोड़ने चले ?

साधुसे स्वप्नका सारा वृत्तान्त सुनकर सदनकी विचित्र गति हो गयी ! प्रभुका इतना प्रगाढ़ प्रेम, इतनी भक्तवत्सलता ! प्रेमकी

बहिया उमड़ पड़ी ! आँखोंसे आँसुओंकी गङ्गा-यमुना बह चलीं ! सारा शरीर रोमाञ्चित हो गया। प्राण विकल हो उठे। रोम-रोमसे 'हरि, हरि'की ध्वनि आने लगी और यह वेग अब रोका कैसे जाता ! प्रेममें तो बन्धन आप-ही-आप टूट जाते हैं ! 'एक'का ही होकर जीने और मरनेकी लालसा होती है। सदन भी भक्ति-विह्वल हृदयसे कुल-परिवारका सब काम-धंधा छोड़कर प्रभुको हृदयमें धारण कर श्रीशालग्रामजीको लेकर पुरुषोत्तमक्षेत्र श्रीजगन्नाथपुरीकी ओर चल पड़े।

सन्ध्या हो चली थी। सदनने सोचा कि यहीं पासके गाँवमें जाकर भिक्षा माँगकर खा लूँ और रातभर विश्रामकर फिर कल चलूँ। यह सोचकर सदन एक गाँवके एक गृहस्थ-परिवारमें ठहर गये। भिक्षा करके वे रातको सोये। आधी रात हो चली थी। सदनके घुँघराले लहराते हुए बाल, बड़ी-बड़ी हिरणके समान आँखें, उन्नत दिव्य ललाट और परम सम्मोहक रूप-तेज देखकर उस घरकी स्त्री मुग्ध हो गयी थी। सदन जहाँ सोया हुआ था, वहाँ आकर वासना-विगलित मोहकी अनेक चेष्टाएँ करती हुई उसने कुत्सित प्रस्ताव रक्खा। बड़े ही लुभावने, मोहमय शब्दोंमें उसने सदनसे साथ ले चलनेकी प्रार्थना की। साधनाके क्षेत्रमें कञ्चन और कामिनी बहुत ही भारी बाधाएँ हैं। कहा भी है—

बाधक रघुवर भगतके क्रोध लोभ तिय काम।
सब रिपु भक्षक जीवके, रक्षक केवल राम॥
काया कौड़ी कामिनी, ये नाँगी तरवार।
निकसे जन हरिभजन को बीचै लीन्ही मार॥

हरि अपने भक्तोंपर सदैव अपनी कृपाकी छाँह बनाये रहते हैं। सम्पूर्ण समर्पण हो चुकनेपर भक्तके सम्पूर्ण योग-क्षेमका भार प्रभुपर चला जाता है। भारी-से-भारी विपत्ति आ जाय, घोर-से-घरो प्रलोभन आ जाय, भगवान् भक्तका हाथ पकड़कर उसे बचा लेते हैं। सदनपर कुत्सित कामकी एक न चली। वे भगवान्का स्मरण करते हुए, आदर और श्रद्धासे सिर झुकाये बोले—'माँ, मेरी परम पूजनीया माँ! अपने चरणोंकी पावन धूल मुझे दे दो! तुम मेरी माँ हो! दयामयी जननी! तुम्हारे चरणोंमें मेरा कोटि-कोटि प्रणाम है।'

वस्तुतः जो सच्चे भक्त हैं, वे विषयोंको विषके समान छोड़ देते हैं। संसारके साधारण जीवोंके लिये भले ही कामिनीका कामुक रूप आकर्षक प्रतीत हो, परंतु भक्त तो स्त्रीमात्रको माताके रूपमें देखते हैं। संसारसे दृढ़ वैराग्य हुए विना, विषयोंसे घोर घृणा हुए विना भक्तिके पथमें चलना महाकठिन है। सदनपर अपना जादू न चलते देख उस कामातुरा स्त्रीने समझा कि शायद यह मेरे पतिके भयसे मेरी प्रार्थना पूरी नहीं करता। वह चुपकेसे गयी और एक तीक्ष्ण तलवारसे पतिका सिर धड़से अलग कर दिया। दौड़ी-दौड़ी आकर उसने सदनसे कामविह्वल वाणीमें कहा, 'लो, अब हमलोगोंके सुख-पथका कण्टक हट गया! मैंने अपने पतिकी हत्या कर दी, क्योंकि वही हमारे प्रेम-सुखका बाधक था!' काम-वासना क्या नहीं करा सकती!! कामान्ध कौन-सा पाप नहीं कर सकता!!!

सदन भयसे काँप उठा! अरे, कामातुरा व्यभिचारिणीने अपनी काम-वासना पूर्ण करनेके लिये अपने पतिका वध कर दिया!

'कण्टक' को हटाकर वह दुष्टा इस साधुको पतित करने चली थी, परंतु सदनके हृदयमें संसारके प्रति इसके कारण और भी घृणा हो चली। साधारण सांसारिक पुरुषोंके लिये स्त्रीका जो रूप मोहक प्रतीत होता है, वही एक वैरागी भक्तके लिये—

स्तनौ मांसग्रन्थी कनककलशावित्युपमितौ
मुखं श्लेष्मागारं तदपि च शशाङ्केन तुलितम्।
स्रवन्मूत्रक्लिन्नं करिवरकरस्पर्धि जघन-
महो निन्द्यं रूपं कविजनविशेषैर्गुरु कृतम्॥

स्त्रियोंके स्तन मांसके लोंदे हैं, पर कवियोंने उन्हें सोनेके कलशोंकी उपमा दी है। स्त्रियोंका मुँह कफका घर है, पर कवि उसे चन्द्रमाके समान बताते हैं और उनकी जाँघोंको, जिनमें पेशाब प्रभृति बहते रहते हैं, श्रेष्ठ हाथीकी सूँड़के समान कहते हैं। स्त्रियोंका रूप घृणाके योग्य है, परंतु कवियोंने उसकी कितनी प्रशंसा की है, ठीक यही बात पुरुषोंके शरीर-सौन्दर्यके लिये समझनी चाहिये। ईश्वरके चरणोंमें लगा हुआ भक्त तो कामको ललकारकर कहता है—

अरे काम बेकाम, धनुष टंकारत तर्जत।
तू कू कोकिल व्यर्थ बोल काहे को गर्जत॥
तैसे ही तूँ नारि, वृथा ही करत कटाछै।
मोहि न उपजै मोह, छोह सब रहि गे पाछै॥
चित चंद्चूड़ के चरन को ध्याव अमृत बरसत हि ते।
आनंद अखंडानंद को ताहि अमृत सुख क्यों हि ते॥

जब हृदयमें प्रभुकी मूर्ति बस गयी तो फिर कामके लिये स्थान ही कहाँ? कामकी उसपर क्या चलै! फिर वह पुरुष हो

या स्त्री, वह तो कामविजयी है। नश्वर रूपपर वह मुग्ध क्यों होने लगा ? वह तो हरिके चरणोंमें निरत है, 'साईं' के सुखका आनन्द लूट रहा है; फिर वह विषयोंकी निकृष्ट कामना क्यों करने जाय ?

जब सब प्रकारकी चेष्टा, अनुनय-विनय करके वह स्त्री थक गयी और सदनको काम-वासनाके लिये उद्दीप्त नहीं कर सकी तो वह द्वारपर आकर छाती पीट-पीटकर रोने लगी। गाँवके लोग जब जुटे तो उस दुष्टाने कह दिया कि यह आदमी हमारे पतिकी हत्या करके हमारे साथ कामलिप्सा पूरी करना चाहता था। सदनने यह सुनकर कुछ भी सफाई नहीं दी, अपितु वह भगवान्‌का नाम जोर-जोरसे प्रेमपूर्वक जपने लगा। लोगोंने सोचा कि यह खूब बना हुआ बदमाश और ढोंगी है कि हत्या करके व्यभिचारकी चेष्टा कर रहा था और जब हमलोग आये तो अब भक्त बनता है। सदन इन आलोचनाओंकी ओर तनिक भी ध्यान न देकर प्रेम-विह्वल हृदयसे प्रभुका नाम-स्मरण करता रहा !

मामला कचहरीमें आया। न्यायाधीशके सम्मुख उस दुष्टा स्त्रीने सारी गढ़ी हुई बातें कह दीं। दृढ़ विश्वासी परम भक्त सदन चुपचाप सब सुनते रहे और अपने मङ्गलमय प्रभुकी लीलापर मुसकराते रहे। दयामय प्रभुकी लीलाकी परीक्षा लेनेके लिये नहीं, अपितु अपने हृदयमें उसकी अनन्त कृपा और प्रेम-वत्सलतामें भरोसा रखते हुए सदनने चुप रहकर मानो सब कुछ स्वीकार कर लिया ! न्यायाधीशके हृदयको परमात्माने प्रेरित कर दिया और उसने प्राणदण्ड न देकर यह आज्ञा दी कि सदनके दोनों हाथ काट लिये जायँ।

हाथोंके कट जानेसे गहरी व्यथा हो रही थी। फिर भी यह सोचकर कि किसी पूर्वजन्मके पापका यह फल है और इसमें भी हरि-कृपाका साक्षात्कारकर हँसते हुए सदन प्रसन्न चित्तसे अपने हृदयेश्वर श्रीजगन्नाथजीके दर्शनके लिये व्याकुल उसी पथको ओर चल पड़े।

भक्तका दुःख तो स्वयं भगवान्का दुःख है। जहाँ-जहाँ भक्तों-पर भीर पड़ती है, वहाँ-वहाँ वे पाँव-पियादे दौड़े आते हैं। भक्तोंका दुःख उनसे देखा नहीं जाता। पिघल जाते हैं, कसमसा जाते हैं और भक्तकी विपत्ति देखकर स्वयं उसको अपने ऊपर झेल लेते हैं। हाथोंसे रुधिरकी धारा बह रही है, घोर व्यथा हो रही है और भक्त सदन अपने प्रभुके पथमें उत्साह, उमङ्ग, प्रेम, उत्कण्ठाके साथ बढ़ रहे हैं। कितने भक्तोंने प्रभुके पथको पलकों-से बुहारा है! इसे कहते हैं निष्ठा! सदनको अपूर्व निष्ठा देखकर श्रीजगन्नाथजीने अपने निष्ठावान् पुजारीको स्वप्न दिया कि 'सदन' नामका एक बहुत बड़ा भक्त आ रहा है। उसे लेनेके लिये अभी सवारी भेजी जाय। पुजारीजी पालकी लेकर आये और सदनको उसमें बलात् बिठाकर ले गये।

भक्त तो अपने भगवान्से कभी-कभी मान भी कर लेता है। जगन्नाथजीके सम्मुख जाकर जब सदनने साष्टाङ्ग दण्डवत् किया तो उनका हृदय प्रेम और उल्लाससे पूर्ण था। प्रभुकृपासे उनके हाथ पूर्ववत् ठीक हो गये, परंतु उनके मनमें यह कौतूहल बना रहा कि पता नहीं, मेरे हाथ कैसे और क्यों कटे? एक रातको साक्षात् श्रीभुवनमनमोहन श्रीजगन्नाथजीने साक्षात् प्रकट होकर

कहा—'प्यारे सदन! तुम्हारे हाथ जो कटे थे—यह तुम्हारे पूर्व-जन्मके एक पापका फल है! तुम पूर्व-जन्ममें काशीमें एक सदाचारी और प्रकाण्ड विद्वान् ब्राह्मण थे। एक दिन एक गाय एक कसाईके घेरेसे भागी जाती थी, पीछे कसाई दौड़कर आया। उसने तुम्हें पुकारा। तुमने कसाईको जानते हुए भी अपनी भुजाएँ गायके गलेमें डालकर उसे पकड़ लिया और कसाई उसे पकड़कर ले गया। वही गाय वह स्त्री थी और वही कसाई उसका वह पति। पूर्व-जन्मके बदलेमें ही उसने उसका गला काटा है। तुमने उस भयातुरा गायको दोनों हाथोंसे पकड़कर उस कसाईको सौंपा, इसी हेतु तुम्हारे दोनों हाथ कटे। इससे तुम्हारा पाप नाश हो गया, यही एक प्रतिबन्ध था जो तुम्हें परम सिद्धि पानेसे रोके हुआ था।' ये वचन कहकर और सदनको पूर्ण प्रेम दानकर श्रीभगवान् अन्तर्धान हो गये।

सदनको आज भगवान्के साथ ही भगवत्कृपाके भी प्रत्यक्ष दर्शन हो गये। भगवत्प्रेममें छके हुए सदन अन्त समयतक प्रभुके नाम-कीर्तन, गुण-गानमें संलग्न रहे और प्रतिपल उनकी निष्ठा प्रभुमें बढ़ती रही। अन्तमें प्रभु श्रीजगन्नाथजीके चरणोंमें ही देह-त्यागकर सदाके लिये परमात्माके परमधाम पधार गये।

बोलो भक्त और उनके भगवान्की जय!

—०:०:०—

मुद्रक—नया संसार प्रेस, भदैनी, वाराणसी–१